श्रमण-हितशिक्षा

लेखक :- पू.आ.रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

श्रमण-हितशिक्षा

लेखक

जिनशासन के महान् ज्योतिर्धर, परम शासन प्रभावक,
महाराष्ट्र देशोद्धारक पू.आचार्य देव *श्रीमद् विजय*
रामचंद्रसूरीश्वरजी म.सा. के तेजस्वी शिष्यरत्न बीसवीं सदी के
महान् योगी, नवकार-विशेषज्ञ, प्रशांतमूर्ति पूज्यपाद पंन्यासप्रवर
श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य के
कृपापात्र अंतिम शिष्यरत्न, मरुधररत्न, गोड़वाड़ के गौरव,
जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर पूज्य आचार्यदेव
श्रीमद् विजय **रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.**

265

प्रकाशक
दिव्य सन्देश प्रकाशन
C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor,
बे.व्यु. बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ.एम.बी. वेलकर स्ट्रीट,
कालबादेवी, मुंबई-400 002.
Cell 84 84 84 84 51 (only whatsapp)

आवृत्ति : प्रथम • **मूल्य :** 250/- रुपये • **प्रतियाँ :** 750
विमोचन : दि. 18-2-2026
विमोचन स्थल : आराधना भवन, सेवाडी, (राज.)
• **Website :** Divyasandesh.online

आजीवन सदस्य योजना

आजीवन सदस्यता शुल्क - 4000/- रु.

• आप जैन धर्म के रहस्य, जैन इतिहास, जैन तत्त्वज्ञान, जैन आचार मार्ग, प्रेरणादायी कथाएँ आदि का अध्ययन करना चाहते हों तो आज ही आप **दिव्य संदेश प्रकाशन** मुम्बई की आजीवन सदस्यता प्राप्त कर लें। सदस्य बनते ही अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि स्व. पूज्यपाद पंन्यासप्रवर **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री** एवं उन्हीं के चरम शिष्यरत्न प्रवचन प्रभावक परम पूज्य ***आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.*** सा. द्वारा लिखित उपलब्ध 7 पुस्तकें दी जाएंगी और **अर्हद् दिव्य संदेश** मासिक तथा भविष्य में हिन्दी भाषा में प्रकाशित पुस्तकें (Open Book Exam साधु–साध्वी उपयोगी पुस्तकें एवं पुनः मुद्रित पुस्तकों को छोड़कर) घर बैठे प्राप्त होगी। आप आजीवन सदस्यता शुल्क मुंबई या बैंगलोर के पते पर दिव्य संदेश प्रकाशन-मुंबई के नाम से चैक व ड्राफ्ट से भेजें।

प्राप्ति स्थान

1. चेतन हसमुखलालजी मेहता
बोरीवली (West) (M.S.)
M. 9867058940

2. प्रवीण गुरुजी
C/o. श्री आत्म कमल लब्धिसूरि जैन पुस्तकालय
श्री आदिनाथ जैन टेंपल,
चिकपेठ, बेंगलोर-560 053.
M. 9036810930

3. चंदन एजेन्सी
607, चीरा बाजार,
मुंबई-400 002.
M.9820303451

आजीवन सदस्यता शुल्क
Rs. 4000/- ***भिजवाने का पता एवं पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :***

(1) दिव्य संदेश प्रकाशन
C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डिंग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002. Mobile : 84 84 84 84 51 (only whatsapp)

(2) दिव्य संदेश प्रचारक
प्रकाश बड़ोल्ला, 52, 3rd Cross, शंकरमट रोड, शंकरपुरा, बैंगलोर-560 004. M. 8971230600

प्रकाशक की कलम से...

नमस्कार महामंत्र के बेजोड साधक, चिंतक एवं अनुप्रेक्षक, बीसवीं सदी के महानयोगी भावाचार्य तुल्य पूज्यपाद पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य के कृपापात्र चरम शिष्यरत्न जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर **पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** के अपने संयम जीवन के स्वर्णिम वर्ष में पूज्यश्री द्वारा हिन्दी भाषा में आलेखित **265 वीं पुस्तक 'श्रमण हित सिक्षा'** का प्रकाशन करते हुए हमें अत्यंत ही हर्ष हो रहा है ।

समय की रफ्तार खूब तेज है । देखते-देखते वे अपने निर्मल व बेदाग संयम जीवन के 50 वें वर्ष में मंगल प्रवेश कर चूके है ।

49 वर्ष के इस काल-खंड में पूज्यश्री ने अनेकविध क्षेत्रों में प्रगति की है ।

बचपन से ही उन्हें जिनेश्वर परमात्मा और जिन-वचनों में पूर्ण श्रद्धा रही है ।

अपने गृहस्थ पर्याय में भी वीतराग प्रभु को छोड अन्यत्र कहीं भी नहीं गए है ।

अपने संयम जीवन में भी डोरा-धागा या मंत्र-तंत्र आदि प्रवृत्तियों से सदैव दूर ही रहे है ।

नमस्कार महामंत्र एवं अपने परमोपकारी गुरुदेव श्री द्वारा मंत्र-जाप आदि के प्रति अटूट श्रद्ध रही हुई हैं ।

वे अपने गुरुदेव के नाम को ही मंत्र-स्वरुप मानते है, अतः प्रतिदिन अपने गुरुदेव का सिर्फ नाम स्मरण ही नहीं बल्कि उनके नाम की माला भी जपते है ।

अपने जीवन में जो कुछ भी उपलब्धियां हुई है, उसका सारा श्रेय अपने गुरुदेव को ही अर्पित करते है ।

देव-गुरु के प्रति पूर्ण आस्था के फलस्वरुप वे सम्यग्दर्शन की निर्मल साधना कर रहे है ।

बचपन से ही व्यवहारिक शिक्षण में उनका स्कुल कॉलेज में सर्वोच्च स्थान था ।

व्यवहारिक शिक्षण में वे हमेशा सर्वप्रथम रहे थे ।

जन्म-जन्मांतरों के संस्कारों के फलस्वरुप उन्हें बचपन में ही ज्ञान में तीव्र रुचि थी ।

उन्हें पढने का खूब शौक था । उन्होंने बचपन में त्याग-वैराग्य व वीर रस का खूब साहित्य पढा है ।

संयम जीवन के स्वीकार के बाद भी उनकी सम्यग्ज्ञान की साधना नियमित रही है । प्रारंभिक संयम जीवन में वे लगभग प्रतिदिन 5 गाथाएं कंठस्थ करते थे । जिसके फलस्वरुप उन्होंने नवस्मरण, चार प्रकरण, तीन भाष्य, छह कर्मग्रंथ, वीतराग स्तोत्र, ज्ञानसार, हारिभद्रीय अष्टक, शांत सुधारस, योग शास्त्र (चार प्रकाश) प्रशमरति, अध्यात्म सार (अपूर्ण) गुणस्थानक क्रमारोह, षोडशक, पंचसूत्र (पांचों) धनंजय नाम माला, सिद्धहेम व्याकरण के सभी सूत्र, योगदृष्टि समुच्चय, महादेव स्तोत्र, अन्ययोग व्यवच्छेदिका, अयोग व्यवच्छेदिका, समकित के 67 बोल की सज्झाय अनेक स्तुति, स्तवन, चैत्यवंदन व सज्झाय, 125 गाथा का स्तवन, आदि कंठस्थ किए थे ।

– संस्कृत व प्राकृत भाषा का अभ्यास कर सैकडों धर्मग्रंथों का वाचन भी किया था ।

संयम जीवन की मर्यादाओं के पालन में भी खूब उत्साही है ।

गुरु आज्ञा का पालन करते हुए अपने संयम जीवन में लगभग 48,000 कि.मी. का विहार भी किया है । विहार के कष्टों को प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार किया है ।

संयम जीवन के स्वीकार के दिन से वे नियमित (बीमारी को छोडकर) एकासना कर रहे है ।

लगभग 50 वर्षों से उनकी ज्ञानपंचमी की आराधना (प्रतिमास सुदी पंचमी को उपवास) भी चालू है ।

मांडली में ही गोचरी, मांडली में ही प्रतिक्रमण, प्रतिदिन खडे-खडे प्रतिक्रमण, प्रतिदिन सूरिमंत्र का नियमित जाप ।

सिर्फ सूर्य के प्रकाश में ही आज तक हजारों पृष्टों का लेखन यह उनकी विशेषता रही है ।

अपने गुरुदेव व दादा गुरुदेवश्री के सैकडों प्रवचनों का अवतरण बखूबी से किया है ।

पूर्वाचार्य कृत अनेक ग्रंथों का अनुवाद व विवेचन सुंदर शैली में किया है ।

उनकी लेखन व प्रवचन शैली तो प्रभावक है ही, साथ में साधु-साध्वीजी के लिए दी गई वाचनाएं भी खूब सुंदर है ।

प्रस्तुत पुस्तक में उनके द्वारा आलेखित **'श्रमण हित शिक्षा'** साधु-साध्वी आदि सभी के लिए खूब प्रेरणादायी है ।

हमें आत्मविश्वास है कि पूज्यश्री द्वारा आलेखित पूर्व प्रकाशनों की भांति प्रस्तुत प्रकाशन भी खूब उपकारक बनेगा ।

Introduction

लेखक-संग्राहक का संक्षिप्त-जीवन

परिचय

गृहस्थ नाम	: राजु (राजमल चोपड़ा)
माता का नाम	: चंपाबाई
पिता का नाम	: छगनराजजी गेनमलजी चोपड़ा
जन्मभूमि	: बाली (राज.)
जन्म तिथि	: भादो सुद-3, संवत् 2014 दि. 16-9-1958
बचपन में धार्मिक अभ्यास	: पंच प्रतिक्रमण-नवस्मरण आदि
ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार	: 18 जून 1974
व्यावहारिक अभ्यास	: 1st year B.Com. (पार्श्वनाथ उम्मेद कॉलेज फालना-राज.)
दीक्षा दाता	: पू.पं. श्री हर्षविजयजी गणिवर्य
गुरुदेव	: अध्यात्मयोगी पू. पंन्यास **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य**
दीक्षा दिन	: माघ शुक्ला 13, संवत् 2033 दि. 2-2-1977
समुदाय	: शासन प्रभावक पू.आ. **श्री रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.**
दीक्षा दिन विशेषता	: भारत भर में लगभग 50 ऊपर दीक्षाएँ
108 मुमुक्षु वरघोड़ा	: 9 जनवरी 1977, मुंबई
दीक्षा स्थल	: न्याति नोहरा-बाली राज.
दीक्षा समय उम्र	: 18 वर्ष
बड़ी दीक्षा	: फाल्गुन शुक्ला 12, संवत् 2033
बड़ी दीक्षा स्थल	: घाणेराव (राज.)
प्रथम चातुर्मास	: संवत् 2033 पाटण पू.पं. श्री हर्षविजयजी के सान्निध्य में ।

- **अभ्यास :** प्रकरण, भाष्य, 6 कर्मग्रंथ, कम्मपयडी, पंचसंग्रह, न्याय, काव्य, कोश, संस्कृत-प्राकृत व्याकरण, संस्कृत-प्राकृत साहित्य वाचन, ज्योतिष, आगम वाचन आदि ।
- **भाषा बोध :** हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, राजस्थानी, संस्कृत, प्राकृत, मराठी आदि ।
- **प्रथम प्रवचन प्रारंभ :** फागुन सुदी 14, संवत् 2034 पाटण (गुजरात) ।
- **चातुर्मासिक प्रवचन प्रारंभ :** बाली संवत् 2038 ।

- **विहार क्षेत्र :** राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्णाटक तामिलनाडू आदि ।
- **पादविहार :** लगभग 49,000 कि.मी. ।
- **अंजन शलाका एवं प्रतिष्ठायें :** मंड्या (कर्णाटक) वलवण, कामसेट, भायंदर (महा.) राजपुरा, भोपाल सागर, राजसमंद आदि में अंजनशलाका प्रतिष्ठा, जयपुर (राज.), बेंगलोर में 3 गृह जिनालय, पूना तथा कोयम्बत्तुर में एक-एक गृह जिनालय ।
- **(छ'री पालित संघ में मार्गदर्शन-प्रवचन) :** बरलूट से शत्रुंजय, गोदन से जैसलमेर, वल्लभीपुर से पालीताणा, लुणावा से राणकपुर पंचतीर्थी ।
- **छ'री पालक निश्रादाता :** उदयपुर से केशरियाजी, गिरधरनगर से शंखेश्वर, धूलिया से नेर, कराड़ से कुंभोज, सोलापुर से बार्शी, भिवंडी से महावीर धाम, कर्जत से मानस मंदिर, हस्तगिरि से शत्रुंजय होकर गिरनार, शत्रुंजय बारह गाऊ, सेवाडी से राणकपूर पंचतीर्थी, बेंगलोर से सुशीलधाम, कोयम्बत्तूर से अव्वलपुंदरी, उदयपुर से दयालशा किल्ला ।
- **प्रथम पुस्तक आलेखन :** **''वात्सल्य के महासागर''** वि.सं.संवत् 2038 ।
- **अद्यावधि प्रकाशित पुस्तकें :** 265 ।
- **शिष्य-प्रशिष्य : स्व.मु. श्री उदयरत्नविजयजी म.,**
  स्व.मुनि श्री केवलरत्नविजयजी म.,
  स्व.मुनि श्री कीर्तिरत्नविजयजी म.,
  मुनि श्री प्रशांतरत्नविजयजी म., मुनि श्री शालिभद्रविजयजी म.,
  मुनि श्री स्थूलभद्रविजयजी म., स्व. मुनि श्री यशोभद्रविजयजी म.,
  मुनि श्री विमलपुण्यविजयजी म., मुनि श्री निर्वाणभद्रविजयजी म.
  मुनि श्री पुण्यबलविजयजी म.
- **उपधान निश्रा दाता :** कुर्ला, धुले, येरवडा, आदीश्वर धाम (दो), कर्जत, विक्रोली, मोहना, पालीताणा (दो बार), सेसली, कीर्तिस्तंभ (घाणेराव), नासिक, सुशीलधाम (बेंगलोर), मैसूर, महावीर धाम (मुंबई), लोढा धाम, सुखधाम (राज.), महावीर जैन विद्यालय-उदयपुर ।
- **गणि पदवी :** वैशाख वदी-6, विक्रम संवत् 2055, दि.7-5-1999 चिंचवड गाँव, पूना ।
- **पंन्यास पदवी :** कार्तिक वदी-5, विक्रम संवत् 2061,
  दि.2-12-2004 श्रीपालनगर, मुंबई ।
- **आचार्य पदवी :** पोष वदी-1, विक्रम संवत् 2067, दि. 20-1-2011 थाणा ।

INDEX

अनुक्रमणिका कहाँ-क्या ?

क्र.	विषय	पृष्ट संख्या	क्र.	विषय	पृष्ट संख्या
1.	जंगम-तीर्थ यात्रा	9	22.	उत्साह संयम का प्राण	88
2.	सद्गुरु-उपासना	19	23.	समस्त जीव-मैत्री	89
3.	निष्फल जीवन	41	24.	मंजिल दूर नहीं है	90
4.	श्रमण जीवन में केश लोच	44	25.	आदेश नहीं, उपदेश	91
5.	पादविहार के फायदे	46	26.	शासन-रक्षा	92
6.	श्रमण-वेश की महिमा	54	27.	प्रायश्चित्त स्वीकार करें	93
7.	संयमी का गुण वैभव	58	28.	स्वदोष दर्शन-आत्म निरीक्षण	94
8.	पर दोष दर्शन से क्या फायदा ?	66	29.	पानी के काल में सावधानी	95
9.	दीक्षा दिन की स्मृति को ताजा करे !	68	30.	पारिष्ठापनिका समिति	95
10.	गुरु के गुण	72	31.	साधु जीवन में संयम यात्रा प्रधान है	96
11.	तप से वासनाओं का शोषण	73	32.	प्राकृत-संस्कृत भाषा अनिवार्य है	97
12.	गुरुकृपा हि केवलं, शिष्यस्य परं मंगलम्	76	33.	बडों के दोष न देखों	99
13.	श्रमण वेश का मूल्यांकन	78	34.	खामेमि-मिच्छामि-वंदामि	100
14.	प्रतिकूलता तो संयम जीवन का प्राण है ।	79	35.	एकांत खतरनाक है	101
15.	युनिवर्सिटी की डिग्रियाँ अनावश्यक है	80	36.	काप में सावधानी	102
16.	देहाध्यास त्याग जरुरी है	81	37.	सद्गुरु के दो आशीर्वाद	103
17.	स्वाध्याय	84	38.	साधु की विशेषताएँ	106
18.	संयम में बाधक तीन ग्रह	85	39.	गुरु से मेल जरुरी है	107
19.	आंख कीमती या कान ?	86	40.	सद्गुरु-उपासना	108
20.	पुण्य से अधिक बलवान् पुरुषार्थ	87	41.	संयम जीवन में वैराग्य वृद्धि के प्रबल निमित्त	119
21.	आंख का दुरुपयोग-पतन का मार्ग	88	42.	श्रमणहित शिक्षा सूत्र	121
			43.	साधु समागम से लाभ	133
			44.	अजीर्ण से बचे	139
			45.	अनुष्ठान को सद्अनुष्ठान बनाए	145
			46.	उत्तमोत्तम या उत्तम बनें	149

1. जंगम-तीर्थ यात्रा

पुण्यशाली आत्मा को ही साधु का दर्शन सुलभ होता है । महान् पुण्योदय से ही साधु का दर्शन प्राप्त होता है ।

साधु तो चलते-फिरते **जंगम तीर्थ** कहलाते हैं । अपने यहाँ स्थावर तीर्थों की यात्रा का खूब-खूब प्रचार है-परंतु हम जंगम तीर्थों को भूल जाते हैं ।

सचमुच, स्थावर तीर्थ की भाँति जंगम तीर्थ की भी अवश्य यात्रा करनी चाहिए ।

हम अपने जीवन में यत्किंचित् भी जो धर्म आराधना कर पाते हैं, वह देव-गुरु की कृपा का ही फल है । देव-गुरु की कृपा के बिना जीवन में धर्म की आराधना शक्य नहीं है ।

जिस प्रकार देव अर्थात् तीर्थंकर परमात्मा की आराधना के लिए स्थावर तीर्थों की यात्रा करते हैं, उसी प्रकार गुरु की आराधना के लिए जंगम तीर्थ की यात्रा का भी उतना ही महत्त्व है ।

चातुर्मास के बाद अधिकांश लोग तीर्थयात्रा के लिए निकलते हैं । चैत्य परिपाटी की भाँति गुरु की यात्रा भी प्रतिवर्ष अवश्य करनी चाहिए ।

तीर्थयात्रा तो समय बीतने पर फल देती है, जबकि साधु का समागम तो तत्काल फल देता है ।

साधु अर्थात् जो मोक्षमार्ग की साधना कर रहे हैं अर्थात् रत्नत्रयी सम्यग् दर्शन-ज्ञान और चारित्र की साधना कर रहे हैं और जो मोक्षमार्ग में मुमुक्षुओं की सहायता कर रहे हैं ।

साधु भगवन्त स्वयं मोक्षमार्ग की साधना करते हैं और भव्य जीवों को मोक्षमार्ग में आगे बढ़ने में सहायता करते हैं । साधु भगवन्त कंचन और कामिनी के त्यागी होते हैं । महाव्रतों का सुन्दर ढंग से पालन कर, धर्मोपदेश देकर भव्य जीवों को भी सर्वविरति और देशविरति धर्म का पालन करवाते हैं ।

साधु भगवंत सर्व संगों का त्याग कर निःस्पृह जीवन जीते हैं । मोक्षमार्ग के लिए सर्वसंग त्याग अनिवार्य है । साधु भगवंत अपने निःस्पृह जीवन द्वारा अन्य जीवों के भी सर्वसंग त्याग में निमित्त बनते हैं और इस प्रकार मोक्षमार्ग में आगे बढ़ने के लिए आलम्बन देते हैं ।

साधु भगवंत के 27 गुण

साधु भगवन्त के निम्नोक्त 27 गुण बतलाये गये हैं–

(1 से 5) पाँच महाव्रतों का पालन – साधु भगवंत पाँच महाव्रतों का पालन करते हैं ।

1. सर्वथा प्राणातिपात विरमण महाव्रत – मन, वचन तथा काया से हिंसा करना नहीं, दूसरे के पास से करवाना नहीं और करने वाले की अनुमोदना भी नहीं करना ।

2. सर्वथा मृषावाद विरमण महाव्रत – मन, वचन तथा काया से झूठ बोलना नहीं, दूसरे से बुलवाना नहीं और बोलने वाले की अनुमोदना नहीं करना ।

3. सर्वथा स्तेय विरमण महाव्रत – मन, वचन तथा काया से चोरी करना नहीं, दूसरे से करवाना नहीं और करने वाले की अनुमोदना भी नहीं करना ।

4. सर्वथा मैथुन विरमण महाव्रत – मन, वचन तथा काया से सर्वथा अब्रह्म का सेवन करना नहीं, दूसरे से सेवन करवाना नहीं और सेवन करते हुए की अनुमोदना भी नहीं करना ।

5. सर्वथा परिग्रह विरमण महाव्रत – मन, वचन तथा काया से परिग्रह रखना नहीं, रखवाना नहीं और रखने वाले की अनुमोदना भी नहीं करना ।

6. रात्रिभोजन का त्याग – सूर्यास्त के बाद तथा सूर्योदय के 48 मिनट तक सभी प्रकार के आहार का त्याग करना ।

(7 से 12) छहकाय की रक्षा – साधु भगवन्त निम्नोक्त छह काय जीवों की रक्षा करते हैं–

(1) पृथ्वीकाय – पृथ्वी शरीरधारी एकेन्द्रिय जीव ।

(2) अप्काय – जल शरीरधारी एकेन्द्रिय जीव ।

(3) तेउकाय – अग्नि शरीरधारी एकेन्द्रिय जीव ।

(4) वाउकाय – पवन शरीरधारी एकेन्द्रिय जीव ।

(5) वनस्पतिकाय – वनस्पति शरीरधारी एकेन्द्रिय जीव ।

(6) त्रसकाय – द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीव ।

(13 से 17) पाँच इन्द्रियों पर संयम – साधु भगवन्त पाँच इन्द्रियों को अपने वश में रखते हैं । जैसे-

(1) स्पर्शनेन्द्रिय – त्वचा के विषयभूत गद्दे, तकिया, कामिनी के स्पर्श आदि का त्याग करते हैं ।

(2) रसनेन्द्रिय – जीभ के विषयभूत स्वादिष्ट पदार्थों की आसक्ति का त्याग करते हैं ।

(3) घ्राणेन्द्रिय – नाक के विषयभूत इत्र आदि सुगन्धित पदार्थों के सेवन का त्याग करते हैं ।

(4) चक्षुरिन्द्रिय – आँख के विषयभूत स्त्री आदि के रमणीय रूप आदि देखने का त्याग करते हैं ।

(5) श्रोत्रेन्द्रिय – कान के विषयभूत मधुर संगीत आदि की आसक्ति का त्याग करते हैं ।

(18 से 20) तीन गुप्ति का पालन –

(1) मनोगुप्ति – मन को वश में रखना ।

(2) वचनगुप्ति – वाणी को वश में रखना ।

(3) कायगुप्ति – काया को वश में रखना ।

21. लोभत्याग – किसी भी बाह्य पदार्थ का लोभ नहीं करना ।

22. क्षमा – क्रोध के प्रसंग में भी क्षमा रखना ।

23. चित्त-निर्मलता – चित्त को शुभ भाव में जोड़ना ।

24. वस्त्र-प्रतिलेखना – प्रतिदिन जीवरक्षा के लिए दो बार वस्त्रों की प्रतिलेखना करना ।

25. संयम पालन – अविवेक का त्याग कर विवेकयुक्त प्रवृत्ति करना ।

26. परीषह सहना – 22 प्रकार के कष्टों को समतापूर्वक सहन करना ।

27. उपसर्ग सहना – देव-मनुष्य तिर्यंच कृत उपसर्गों को सहन करना ।

जैन साधु-जीवन अर्थात् स्वाधीन जीवन

◆ दाढ़ी व सिर के बाल लोच द्वारा दूर करते हैं, अतः उन्हें हजाम की जरूरत नहीं है । साधु जीवन में केश का शणगार नहीं है । गृहस्थ दो-चार दिन बाद दाढ़ी न बनाए तो उसका चेहरा भूत जैसा हो जाता है ।

◆ साधु जीवन में छोटे-मोटे सभी आभूषण-अलंकारों का त्याग होता है, अतः उन्हें **सोनी** की गुलामी नहीं करनी पड़ती है ।

◆ साधुजीवन में सिले हुए कपड़ों का निषेध है । शर्ट, पेंट, पाजामा, कोट, बनियान, स्वेटर आदि का निषेध होने से **दर्जी** की जरूरत नहीं रहती ।

◆ साधु का अपना कोई घर, बंगला या फ्लेट नहीं होता है, अतः किसी आर्किटेक्ट, इंजीनियर, कॉन्ट्रेक्टर, बिल्डर या दलाल की जरूरत नहीं रहती है ।

◆ साधु जीवन में कार, बस, स्कूटर, ट्रेन की अपेक्षा नहीं रहती है, अतः पेट्रोल-डीजल के भाव बढ़ें या घटे, उसकी उन्हें चिंता नहीं होती है ।

सामान्य गृहस्थ को 1-2 दिन स्नान न करे तो भी नहीं चलता है, साधुजीवन में जिंदगी भर स्नान का निषेध है, फिर भी उनकी पवित्रता बनी रहती है, क्योंकि ब्रह्मचर्य का पालन ही सर्वश्रेष्ठ आत्मस्नान है ।

साधुजीवन में बूट-चप्पल व जूते आदि का त्याग होने से **मोची** की अपेक्षा नहीं रहती है ।

◆ साधुजीवन सादगीपूर्ण जीवन है, Simple Living and High thinking तेल, साबुन, क्रीम, सेंट, इत्र, परफ्यूम तथा अन्य कोस्मेटिक वस्तुओं की जरूरत नहीं रहती है ।

◆ फैशन-डिजाइन के बदलते ही गृहस्थ को अपने कपड़े बदलने पड़ते हैं । फेशन बदलते ही पहले के कपड़े बेकार हो जाते हैं, जबकि साधु जीवन में फैशन ही नहीं है । आज से 2500 वर्ष पहले जो Dress fix था, वही ड्रेस आज भी fix है । कपड़ों का White colour आज भी वैसे-का-वैसे चला आ रहा है ।

◆ गृहस्थ को रहने के लिए अपना घर होता है, अतः उसका Address Fix होता है, जबकि साधु का जीवन तो Mobile Life है, आज उत्तर भारत में है तो बाद में दक्षिण भारत में भी जा सकते हैं । अतः उनका Address Fix नहीं है ।

साधु को रसोई बनाने की नहीं होती है, अतः वनस्पति के छेदन-भेदन-संघट्टन आदि का कोई पाप नहीं होता है ।

इलेक्ट्रिक Light, पंखा, हीटर, कूलर आदि का उपयोग नहीं होने से तेउकाय व वायुकाय की जीव विराधना से उनका जीवन मुक्त होता है । Light चली जाती है और एक गृहस्थ का जीवन अस्त व्यस्त हो जाता है, वह आकुल-व्याकुल हो जाता है, जबकि साधु जीवन में तो जिंदगीभर के लिए Light Off हो गई होती है, फिर भी जीवन में आकुलता-व्याकुलता को कोई स्थान नहीं होता है ।

फोन-फेक्स, इंटरनेट, कम्प्यूटर, टी.वी., रेडियो, टेपरेकॉर्डर आदि सभी इलेक्ट्रिक साधनों का साधु-जीवन में बहिष्कार होने से उस संबंधी सभी समस्याओं से साधु-जीवन में मुक्ति होती है ।

◆ साधु को पैसे रखने नहीं पड़ते हैं । बैंक में एकाउंट नहीं और बिजनेस में भागीदारी नहीं, कहीं-नौकरी नहीं, कहीं व्यापार नहीं । क्रय-विक्रय की चिंता नहीं ।

किसी वस्तु की महंगाई उसे बाधक नहीं बनती है । वस्तु का मूल्य घटे या बढ़े । टैक्स कम हो या ज्यादा हो, उसकी कोई चिंता नहीं ।

साधु जीवन में न Income Tax है न Sales tax है न प्रोपर्टी टैक्स है, न हाउस टैक्स है ।

साधु के पास अपना एक पैसा नहीं है, फिर भी अपने त्यागमय जीवन और वैराग्यमय उपदेश के द्वारा गृहस्थों से करोड़ों का दान करा सकते हैं ।

साधु जीवन में कल के लिए भोजन या भोजनसामग्री रखने की छूट नहीं है, फिर भी आश्चर्य है कि उन्हें कभी भूखा मरना नहीं पड़ता है ।

गृहस्थ अपनी संपत्ति बढ़ाना चाहता है, संपत्ति के बढ़ने में वह अपनी उन्नति समझता है, जबकि साधु जीवन में अल्प सामग्री ही रखने की होती है, उस अल्प सामग्री में भी साधु की मस्ती कुछ और ही होती है ।

गृहस्थ के रसोड़े में छह काय की हिंसा

1. रसोई बनाने में **कच्चे नमक** का उपयोग होता है, अतः पृथ्वीकाय की हिंसा होती है ।

2. रसोई बनाने में, शाक बनाने में, अनाज पकाने में कच्चे पानी का उपयोग होता है, अतः अप्काय की हिंसा होती है ।

3. रसोई बनाने में **अग्नि** का भी उपयोग होता है, अतः तेउकाय की हिंसा होती है ।

4. वायु के बिना अग्नि टिक नहीं सकती, अतः वायुकाय की भी विराधना होती है ।

5. शाक आदि बनाने में **वनस्पतिकाय** की भी हिंसा होती है ।

6. अग्नि सभी जीवों के लिए शस्त्र रूप होने से इधर उधर उड़नेवाले त्रस जीव भी अग्नि में गिरकर मर जाते हैं, अतः त्रसकाय की भी हिंसा होती है ।

साधुजीवन में छह काय को अभयदान

1. साधु जीवन में कभी भी रसोई बनाने की नहीं होती है, अतः साधु छह काय की विराधना के पाप से बच जाते हैं ।

2. गोचरी में कदाचित् नमक बिना की दाल आ गई तो साधु भगवंत कच्चे नमक का उपयोग नहीं करते हैं ।

3. कितनी भी प्यास क्यों न लगी हो साधु भगवंत सचित्त जल नहीं पीते हैं और न ही काप आदि बाह्य उपयोग में कच्चे पानी का उपयोग करते हैं ।

4. ठंडी से बचने के लिए कभी भी साधु भगवंत अग्नि का सेवन नहीं करते हैं और न ही प्रकाश के लिए इलेक्ट्रिक लाइट चालू करते हैं ।

5. भयंकर गर्मी की पीड़ा में भी साधु भगवंत पंखें आदि का उपयोग नहीं करते हैं ।

6. सचित्त वनस्पति का स्पर्श भी नहीं करते हैं तो आहार में लेने की तो बात ही कहाँ आती है ?

7. कहीं भी जाना-आना हो तो साधु भगवंत ईर्या समिति के पालनपूर्वक देखकर चलते हैं, अतः त्रसकाय के जीवों की हिंसा का त्याग करते हैं ।

इस प्रकार समग्र साधु जीवन में छह काय के जीवों की विराधना का त्याग होने से छह काय के जीवों को अभयदान दिया जाता है ।

जैन दीक्षाः अर्थात् त्यागमय जीवन

आत्मा की आध्यात्मिक संपत्ति को पाना हो तो दुनिया की भौतिक सुख-सुविधाओं का त्याग जरुरी है ।

आध्यात्मिक वैभव को पाना हो तो देह के प्रति कठोर बनना पड़ेगा । जैन साधु जीवन के स्वीकार के साथ ही दैहिक सुखों का त्याग करना पड़ता है । जैसे–

1) आज तक चलने-फिरने-घूमने के लिए स्कूटर, मोटर, गाड़ी, ट्रेन, प्लेन, जहाज, नाव आदि का उपयोग किया, अब से जीवन भर के लिए उन साधनों का त्याग किया जाता है । हमेशा पैदल ही चलना होता है ।

2) शरीर के शणगार के लिए मस्तक में तैल, इत्र, क्रीम, नेलपॉलिश, होठ पॉलिश आदि साधनों का उपयोग किया जाता था, आगे से उनका जिंदगी भर के लिए त्याग होता है ।

3) विविध रंगी वेशभूषा, विविध डिजाइन के वस्त्रों का त्याग किया जाता है । संसारी लोग कभी पंजाबी ड्रेस पहनते हैं तो कभी अंग्रेजी । संयम जीवन में हमेशा के लिए उन सब का त्याग किया जाता है । एक मात्र सफेद वस्त्र और वे भी बिना सिले हुए ही पहने जाते हैं ।

4) जैन साधु की कठोरतम साधना केशलोच की है । मस्तक एवं दाढ़ी मूँछ के सभी बाल खींचकर निकालने पड़ते हैं ।

5) हाथ, अंगुली तथा गले आदि में सोने, चांदी या हीरे के आभूषणों का सर्वथा त्याग किया जाता है । देह को आभूषणों से नहीं, गुणों से सुशोभित करना होता है ।

6) जैन दीक्षा कोई पेट भरने के लिए नहीं है, आज लाखों-करोड़ों की संपत्ति को छोड़कर दीक्षा लेनेवाले हैं । कॉलेज में उच्चतम शिक्षण प्राप्त अनेक डॉक्टर, वकील, चार्टर्ड एकाउंटेंट आदि ने भी दीक्षा धर्म को स्वीकार किया है ।

पूर्ण स्वतंत्र और स्वाधीन साधु जीवन

संसार में हर व्यक्ति स्वतंत्र जीवन जीना चाहता है । स्वतंत्रता सभी को पसंद है, परतंत्रता किसी को पसंद नहीं है । परंतु सच्ची स्वतंत्रता तो एक मात्र मोक्ष में है । जो भी आत्मा कर्म के अधीन है, उसे संसार में अनेक प्रकार की पराधीनताएँ स्वीकार करनी पड़ती हैं ।

कर्म के बंधन से सर्वथा मुक्त बनना हो तो उसके लिए प्रभु आज्ञा की आराधना और गुरु की पराधीनता को स्वीकार करना ही पड़ता है ।

जो व्यक्ति गुरु की अधीनता और प्रभु आज्ञा की आराधना स्वीकार करने के लिए राजी नहीं है, वह आत्मा कभी अपनी पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त नहीं करती है ।

जैन साधु जीवन अर्थात् एकदम स्वाधीन जीवन, निष्पाप जीवन और एक मात्र परोपकारमय जीवन ।

जैन साधु, जीवदया के पालन के लिए पैदल चलते हैं, अतः वे एरोप्लेन में नहीं उड़ते हैं, ट्रेन में नहीं बैठते हैं, मोटर स्कूटर-टेंपो-टैक्सी, बस व हीरो होंडा का उपयोग नहीं करते हैं ।

साधु जीवन में लेश भी पेट्रोल का उपयोग नहीं होने से वे अपने स्वयं के लिए वातावरण में प्रदूषण भी नहीं करते हैं ।

प्रतिवर्ष फरवरी के End में बजट आता है और टेक्सों के भार से आदमी की कमर टूट जाती है, बल्कि साधु जीवन में टेक्सों का कोई भय नहीं, महँगाई बढ़े या घटे, उसकी कोई परवाह नहीं, रेल्वे की हड़ताल हो, ट्रेन-बसों की हड़ताल हो या सरकारी कर्मचारियों की हड़ताल हो, उनका साधुजीवन पर कुछ भी असर नहीं होता है ।

साधुजीवन में फेन, फोन, फ्रिज, फिएट, लिफ्ट के बिगड़ने का भय नहीं है ।

गृहस्थ जीवन में अनेक की गुलामी करनी पड़ती है । ऊपर चढ़ना हो तो लिफ्ट चाहिए, ऑफिस जाना हो तो गाड़ी चाहिए, रसोई बनानी हो तो गैस, स्टोव, गैस सिलेंडर, प्रेसर-कुकर व लाइट चाहिए ।

संसार की अनेकविध प्रवृत्तियों में आकंठ डूबे व्यक्ति को आनंद पाने के लिए मनोरंजन के साधन चाहिए । वह मनोरंजन के लिए अखबार पढ़ता है, रेडियो सुनता है, टी.वी. देखता है ।

गर्मी के दिनों में गर्मी से राहत पाने के लिए उसे पंखा चाहिए, कूलर चाहिए, A.C., फ्रिज चाहिए । ठंड़ी के दिनों में गीजर चाहिए ।

रसोई बनाने में उसकी पराधीनता का पार नहीं है । उसे रसोइया चाहिए, घाटी चाहिए, मिक्सर चाहिए, ज्यूसर चाहिए, ग्राइंडर चाहिए । इनमें से एक भी पराधीनता साधुजीवन में नहीं है ।

गृहस्थ को बाजार में कपड़ा खरीदने के बाद उसकी सिलाई के लिए दर्जी चाहिए, कपड़े गंदे हो जाय तो धोबी चाहिए ।

सिर के बाल व दाढ़ी बढ़ जाय तो हज्जाम व हेयर ड्रेसिंग सेलून की अपेक्षा रहती है ।

बाथरुम में पाइप लीक हो जाय तो प्लंबर चाहिए, बिजली का फ्यूज उड़ जाय तो इलेक्ट्रिशियन चाहिए ।

व्यापार में माल खरीदने-बेचने आदि में नौकर चाहिए, एजेंट चाहिए, वकील चाहिए, इन्कमटैक्स कंसलटेंट आदि चाहिए ।

हिसाब-किताब व जीवन-व्यवहार को चलाने के लिए टेलिफोन चाहिए, मोबाइल चाहिए, केलक्युलेटर चाहिए, कंप्यूटर चाहिए, फेक्स मशीन चाहिए, टाइपरायटर चाहिए । अखबारवाला चाहिए, शाकवाला चाहिए ।

मुँह के मेकअप के लिए कोस्मेटिक आइटम चाहिए । मकान, फ्लेट खरीदने आदि के लिए बिल्डर चाहिए, कॉन्ट्रेक्टर चाहिए, एजेंट चाहिए । इनमें से एक की भी गुलामी साधु जीवन में नहीं है ।

गृहस्थ को माल बेचने में व्यवहारिक संबंध जोड़ने आदि में बार-बार झूठ बोलना पड़ता है । व्यापारी और वकिल लोभ से और बालक भय के मारे झूठ बोलते हैं । साधु जीवन में झूठ बोलने की जरूरत ही नहीं है ।

गृहस्थ जीवन में व्यक्ति माल बेचने में माप-तोल की गड़बड़ कर चोरी करता है, वस्तु में मिलावट करता है तथा अन्य भी कई प्रकार की छोटी-मोटी चोरियाँ होती रहती हैं, जबकि साधु जीवन में तो सुई जितनी छोटी वस्तु भी बिना पूछे लेने की अनुमति नहीं है ।

गृहस्थ जीवन में मैथुन सेवन आदि के पाप भी जुड़े हुए हैं, जबकि साधुजीवन में तो सर्वथा ब्रह्मचर्य का पालन करना होता है और उस व्रत के पालन हेतु नौ बाड़ों के बीच ही रहना होता है ।

गृहस्थ जीवन में धन की प्यास सदैव बनी रहती है । ठंडा पानी पीने से बाहर की प्यास तुरंत बुझ जाती है, परंतु मन की प्यास को बुझाना बहुत ही मुश्किल कार्य है । ज्यों-ज्यों धन मिलता जाता है, त्यों-त्यों उसकी प्यास अधिक बढ़ती जाती है । बाह्य पदार्थों के संग्रह द्वारा कहीं तृप्ति का अनुभव देखने को नहीं मिलता है, जबकि साधुजीवन में तो संयम के उपकरण सिवाय अन्य कुछ भी पदार्थों के संग्रह का ही सर्वथा निषेध है । अपनी उपधि अपने साथ ही रखने की होती है और उसे भी अपने कंधों पर उठानी होती है, अतः संयम-साधक मर्यादित वस्तुओं का ही संग्रह होता है ।

अनुकूलता का आकर्षण और प्रतिकूलता का द्वेष नहीं होने से सभी प्रकार के संयोगों में वह मस्त फकीरी का जीवन जी सकता है ।

2. सद्गुरु-उपासना

पंचसूत्र में कहा है–

''आयओ गुरु बहुमाणो अवंज्झ कारणत्तेण ।''

गुरु का बहुमान मोक्ष का अवंध्य कारण है अर्थात् जिसके हृदय में अपने गुरुदेव के प्रति पूर्ण बहुमान भाव है, उसका अवश्य मोक्ष है ।

जीवन में अन्य गुणों को आत्मसात् करने से आत्मा का मोक्ष हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है, परंतु अपने भवोदधि तारक उपकारी सद्गुरु के प्रति जिसके हृदय में पूर्ण बहुमान भाव है, उस आत्मा का तो अवश्य मोक्ष होता ही है ।

जगत् के जीवों के उद्धार के लिए धर्म शासन की स्थापना करने वाले श्री तीर्थंकर परमात्मा है, परंतु उस शासन को दीर्घकाल तक चलनेवाले तो सद्गुरु ही है ।

शासन की स्थापना के बाद ऋषभदेव प्रभु का अस्तित्व 1000 वर्ष न्यून 1 लाख पूर्व वर्ष तक रहा, जबकि उनका शासन 50 लाख करोड़ सागरोपम तक चला, इतने दीर्घकाल तक शासन चलानेवाले गुरु ही तो है ।

शासन की स्थापना के बाद भगवान महावीर का अस्तित्व 30 वर्ष तक रहा, जबकि उनके द्वारा स्थापित शासन 21000 वर्ष तक रहेगा यह सब सद्गुरु को ही आभारी है ।

देव-गुरु और धर्म रुपी तत्त्वत्रयी के बीच में गुरु को रखा है इसका अर्थ है कि देव और धर्म तत्त्व की पहचान करानेवाले गुरु ही है ।

संसार में तीर्थंकरों का अस्तित्व मर्यादित समय के लिए होता है, क्योंकि उनका आयुष्य परिमित होता है, जबकि उनके अभाव में दीर्घकाल तक जगत् के जीवों को धर्मबोध देनेवाले सद्गुरु ही होते हैं ।

तारक तीर्थंकर परमात्मा अपने धर्मोपदेश द्वारा जीवों को प्रतिबोध करते हैं, परंतु दीक्षा प्रदान के बाद उन शिष्यों के योगक्षेम के लिए उन्हें छद्मस्थ गुरुओं को ही सौंपते हैं, क्योंकि छद्मस्थ शिष्य की सारणा,

वारणा, चोयणा और पडिचोयणा छद्मस्थ गुरु ही कर सकते हैं, अतः सद्गुरु का उपकार अपरंपार है ।

सद्गुरु का शिष्य पर उपकार

1. जिनेश्वर परमात्मा की सच्ची पहचान कराते हैं ।

2. जिनेश्वर परमात्मा के द्वारा निर्दिष्ट धर्म का स्वरुप समझाते हैं ।

3. अपने उपदेश द्वारा संसार की असारता समझाते हैं ।

4. गुरु ही उपदेश द्वारा शिष्य के हृदय में वैराग्य भाव का बीजारोपण करते हैं ।

5. अपनी प्रेरणा द्वारा शिष्य के वैराग्य भाव को पुष्ट करते हैं ।

6. सद्गुरु ही मुमुक्षु को संयम जीवन का प्रशिक्षण देते हैं ।

7. सद्गुरु ही शिष्य को ग्रहण शिक्षा और आसेवन शिक्षा प्रदान करते हैं ।

8. योग्य आत्मा को गुरु प्रव्रज्या प्रदान कर भवसागर से पार उतारते हैं ।

9. सद्गुरु ही शिष्य की शारीरिक और आध्यात्मिक चिंता करते हैं ।

10. गुरु ही शिष्य को शास्त्राभ्यास कराकर हर तरह से योग्य बनाते हैं ।

11. सुयोग्य शिष्य को गुरु ही आचार्य आदि पद प्रदानकर स्वतुल्य बनाते हैं ।

इस प्रकार अनेक रीति से सद्गुरु शिष्य पर उपकारों की वर्षा करते हैं । सद्गुरु ही शिष्य के अज्ञान और मोहरूपी अंधकार को दूर करते हैं ।

एक मात्र प्रभुशासन की परंपरा को जीवंत रखने के लिए और संसार के कीचड़ में से बाहर निकाल कर मोक्ष मार्ग में आगे बढ़ाने के लिए योग्य आत्मा को सद्गुरु दीक्षा प्रदान करते हैं ।

सच्चा शिष्य

भूल हो जाने के बाद उस शिष्य को ठपका देने में यदि गुरु संकोच का अनुभव करते हों तो उस शिष्य को धिक्कार है ।

गुरु से नहीं डरनेवाला शिष्य, शिष्य कहलाने के योग्य नहीं है ।

शिष्य अर्थात् अनुशासन के योग्य ! जो शिष्य गुरु के अनुशासन को स्वीकार नहीं करता है, वह नाम का ही शिष्य है, वास्तविक शिष्य नहीं है ।

जिस प्रकार राजा की आज्ञा को प्रजाजन हाथ जोड़कर बहुमानपूर्वक स्वीकार करते हैं, उसी प्रकार गुरु की आज्ञा को भी शिष्य संपूर्ण बहुमानपूर्वक हाथ जोड़कर स्वीकार करता है ।

ठीक ही कहा है–

''आज्ञा गुरुणां ह्यविचारणीया'' गुरु की आज्ञा को लेश भी विलंब किए बिना स्वीकार करनी चाहिए और उस आज्ञा के अनुरुप प्रवृत्ति करनी चाहिए । जो शिष्य गुरु की आज्ञा को बहुमान पूर्वक स्वीकार कर उस आज्ञा का समुचित पालन करता है, उसे महान लाभ होता है ।

शिष्य के गुण

'उपदेशमाला' ग्रंथ में सुयोग्य शिष्य के गुण बतलाए हैं–

1. अनुवर्तक :– अर्थात् गुरु के अनुकूल वर्तन करनेवाला ।

2. विनीत :– नम्रतापूर्वक व्यवहार करनेवाला ।

3. क्षमाशील :– क्षमा भाव धारण करनेवाला, गुरु के ठपके आदि को सहन करनेवाला ।

4. भक्तिवाला :– गुरु के प्रति हृदय में विशेष आदर भाव रखनेवाला ।

5. गुरुकुलवासी :– हमेशा गुरु के सान्निध्य में ही रहनेवाला ।

'चंद्रक वेध्यक' पयन्ना में सुयोग्य शिष्य के निम्न गुण बतलाये हैं–

1. नम्र हो । 2. विनीत हो । 3. गुरु के प्रति ममत्वभाव रखता हो ।
4. गुणों का ज्ञाता हो । 5. सज्जन हो ।

गुरु की इच्छा को जाननेवाला हो और गुरु की इच्छा के अनुरुप प्रवृत्ति करनेवाला हो ।

सुयोग्य शिष्य पृथ्वी की भाँति सब कुछ सहन करता है ।

ठंडी, गर्मी, भूख-प्यास-मान-अपमान आदि को समतापूर्वक सहन करता है ।

सुयोग्य शिष्य अपने उपकारी गुरुदेव के गुणों की हमेशा प्रशंसा-अनुमोदना करता है, परंतु कभी भी उनकी निंदा नहीं करता है ।

अद्‌भुत समर्पण

वज्रमुनि बाल थे । परंतु सिंहगिरि ने अपने शिष्यों को कहा, **'तुम्हें वज्रमुनि वाचना देगा ।'**

उस समय सिंहगिरि के उन शिष्यों ने लेश मात्र भी विकल्प किए बिना अपने गुरुदेव के वचन को **'तहत्ति'** कहकर स्वीकार कर लिया ।

उन्होंने अपने गुरुदेव को यह तर्क नहीं दिया कि ये वज्रमुनि तो बाल है, उन्होंने क्या अभ्यास किया है, वे हमें क्या वाचना देंगें ?

सिंहगिरि के शिष्य वज्रमुनि के पास बहुत ही विनयपूर्वक वाचना लेने लगे । वज्रमुनि की वाचना पद्धति से उन्हें खूब संतोष हुआ ।

वज्रमुनि ने पदानुसारी लब्धि के बल से साध्वी भगवंत के मुख से सुन-सुनकर ग्यारह अंगों का अभ्यास कर लिया था ।

इतने महाज्ञानी होने पर भी बाल मुनि की गंभीरता कितनी थी कि कभी भी उन्होंने अपने मुख से यह नहीं कहा कि मुझे पढने की क्या जरूरत है, यह सब तो मैं जानता हूँ ।

सिंहगिरि के शिष्यों में भी कितना अद्‌भुत समर्पण था कि **'बालमुनि तुम्हें वाचना देंगें'** इस गुरु वचन को सुनकर उन्होंने गुरुदेव के आगे किसी भी प्रकार का तर्क वितर्क नहीं किया और गुर्वाज्ञा को बहुमानपूर्वक स्वीकार किया । यह उनके गुरु-समर्पण भाव को ही दर्शाता है ।

अपूर्व समर्पण

किसी मूक शिष्य को गुरुदेव ने कहा, **'उस साँप को अपनी अंगुली से मापकर आओ ।'**

शिष्य ने गुरुदेव की आज्ञा को 'तहत्ति' कहकर स्वीकार किया ।

वह शिष्य जैसे ही साँप को अपनी अंगुली से मापने के लिए उसके पास गया, वैसे ही उस साँप ने जोर से फूत्कार किया ।

साँप के फूत्कार से वह शिष्य जोर से चिल्लाया । उसकी चिल्लाहट के साथ ही उसकी जीभ ठीक हो गई और उसका मूकपना दूर हो गया ।

गुरु की आज्ञा को एकांत हितकर समझकर उसे स्वीकार करने से उसे लाभ ही हुआ ।

गुरु गीतार्थ होते हैं, अतः उनकी आज्ञा का कभी अनादर नहीं करना चाहिए । वे लाभ-अलाभ देखकर ही हितकारी आज्ञा करते हैं ।

ठीक ही कहा है–

'गीतार्थ गुरु की आज्ञा से विष का भक्षण करे तो भी एकांत लाभ है ।'

आज्ञा में तर्क न करे

कौए का रंग काला होता है फिर भी गुरु यदि कहे, **'देखो, यह सफेद कौआ है ।'** तो गुरु के वचन को **'तहत्ति'** कहकर स्वीकार करना चाहिए । परंतु मन में किसी प्रकार का तर्क-वितर्क नहीं करना चाहिए ।

फिर एकांत में विनयपूर्वक गुरु को पूछे, **'भगवंत ! कौआ तो काला होता है, परंतु आपने सफेद कहा, उसका क्या रहस्य है ?'**

उस समय गुरुदेव ने कहा, **'वह कौआ रंग से तो काला ही था',** परंतु निकट भविष्य में ही मोक्षगामी होने से वह अंदर से उजला था, अतः मैंने कहा, **'यह सफेद कौआ है । मैंने यह बात उसकी अंतरंग योग्यता को देखकर कही है ।'**

इस बात को सुनकर शिष्य के मन का समाधान हो गया ।

गुरु की आज्ञा के पालन में प्रभु की आज्ञा का पालन है और गुरु की आज्ञा के भंग में प्रभुकी आज्ञा का भंग है । गुरु तो प्रभु के ही प्रतिनिधि हैं ।

गुरु समर्पण

पूर्व के पुण्योदय से कदाचित गुरु से भी अधिक शिष्य-संपदा, शिष्य को प्राप्त हो जाय तो भी समर्पित शिष्य कभी भी गुर्वाज्ञा का भंग नहीं करता है । भगवान महावीर के 14000 शिष्य थे, जब कि गौतम स्वामी के 50000 शिष्य थे ।

छट्ठ तप के पारणे में मध्याह्न के समय गोचरी वहोरकर आए गौतम स्वामी को जब भगवान महावीर ने कहा, **'हे गौतम ! श्रावक को इतना अवधिज्ञान हो सकता है, अतः तुन्हारी भूल हो गई है, तुम जाकर आनंद श्रावक को मिच्छा मि दुक्कडम् दे दो ।'**

तत्क्षण गौतम स्वामी ने प्रभु की आज्ञा स्वीकार की ।

यद्यपि वे छट्ठ के पारणे गोचरी वहोरकर आए हुए थे, तब भी उन्होंने यह नहीं कहा कि मेरे छट्ठ का पारणा है, मैं पारणा करके आनंद श्रावक को मिच्छा मि दुक्कडम् दे दूंगा ।

अथवा दो दिन बाद जब पुनः गोचरी के लिए जाना होगा, तक एक पंथ दो काज के नियमानुसार उन्हें मिच्छा मि दुक्कडम् दे दूंगा ।

ऐसे किसी भी प्रकार के विकल्प किए बिना गौतम स्वामी `मिच्छा मि दुक्कडम्' देने के लिए चले गए ।

कठोर शिक्षा का भी सहर्ष स्वीकार

शिष्य की भूल होने पर यदि गुरु कठोर दंड दें तो भी समर्पित शिष्य प्रसन्न चित्त से गुरु के दंड को स्वीकार करता है, परंतु मन में लेश भी खेद किए बिना गुरु का प्रतिकार नहीं करता है ।

नूतन दीक्षित मुनि के कंधे पर रहे चंडरुद्राचार्यजी ने अंधेरे में बराबर नहीं चलने पर शिष्य के मस्तक पर दंड आदि से प्रहार भी किया, जिसके फलस्वरुप शिष्य के मस्तक में से खून बहने लगा, परंतु समर्पित शिष्य ने अपने गुरुदेव के प्रति मन में लेश भी रोष नहीं किया । इसी के फलस्वरुप गुरु के छद्मस्थ रहते हुए भी शिष्य को केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई ।

गुरु-समर्पण

शिष्य अर्थात् गुरु की हर आज्ञा को **'तहत्ति'** कहकर स्वीकार करने वाला ।

शिष्य अर्थात् गुरु की हर इच्छा का **अनुसरण** करनेवाला ।

उपदेशमाला में लिखा है–

'गुरु की आज्ञा का पालन नहीं करता हुआ शिष्य अनंत संसारी बनता है ।'

'अकरंतो गुरु वयणं अणंत संसारिओ होइ ।'

शिष्य को लोक संपर्क में नहीं,
श्लोक संपर्क में रस होना चाहिए ।

- गुरु की हर आज्ञा के स्वीकार में समर्पण की सुवास है ।
- **जहां सरलता होगी, वहां भूल का स्वीकार सहज होगा ।**
- संयम जीवन में तप-जप-ज्ञान-ध्यान कम होगा तो चलेगा, परंतु गुरु समर्पण भाव में थोडी भी कमी नहीं चलेगी ।

सुयोग्य शिष्य

सद्गुरु शिष्य के आत्मविकास के लिए सारणा-वारणा आदि करते है ।

यद्यपि शिष्य की भूल होने पर गुरु मधुर वचन से ही शिष्य को ठपका देते हैं, परंतु कभी कठोर वचन से भी ठपका दें तो भी शिष्य उसे समतापूर्वक सहन करता है, परंतु कभी भी गुरु का प्रतिकार नहीं करता है ।

कदाचित् शिष्य की भूल न हो और गुरु कठोर शब्दों में ठपका दे तो भी शिष्य को गुरु का प्रतिकार नहीं करना चाहिए । उसी में शिष्य का हित है ।

प्रतिकार करे पर गुरु निरुत्तर हो सकते हैं, परंतु उसमें शिष्य को ही नुकसान होता है ।

गुरु समर्पण

एक बार किसी साधु महात्मा ने माता-पिता की अनुमति बिना ही किसी मुमुक्षु को दीक्षा दे दी । **पू.दानसूरिजी म.** को लगा कि **मुनि प्रेमविजयजी म.** ने यह दीक्षा दी है, अतः **दानसूरिजी म.** ने उन्हें बुलाकर कठोर शब्दों में ठपका दिया । **पू. प्रेमविजयजी म.** ने खूब शांति से गुरुदेव के कठोर वचनों को सहन किया । उन्होंने गुरुदेव का लेश भी प्रतिकार नहीं किया । इतना ही नहीं, उन्होंने सोचा, ``अहो ! मेरे कारण गुरुदेव को कितना कष्ट हुआ ?'' इस प्रकार विचार करते हुए उनकी आँखों में आँसू आ गए । उन्होंने गुरुदेव से क्षमायाचना की ।

कुछ समय बाद **दानसूरिजी म.** को पता चला कि यह दीक्षा **प्रेमविजयजी म.** ने नहीं किंतु अन्य किसी महात्मा ने दी है ।

गुरुदेव ने **प्रेमविजयजी** को मिच्छा मि दुक्कडं कहा और बोले, `उस समय तुमने मुझे सत्य क्यों नहीं कहा ?'

प्रेमविजयजी म. ने कहा-गुरुदेव ! आपके सामने मुझे अपनी जीभ चलाना (प्रतिकार करना) उचित नहीं लगा ।

सचमुच, योग्य शिष्य की यही विशेषता होती है । भूल हो या न हो वे कभी भी गुरु का प्रतिकार नहीं करते हैं अर्थात् गुरु के सामने नहीं बोलते है ।

गुरु के ठपके से लाभ

महावीर प्रभु की देशना-समाप्ति के बाद जब मृगावती साध्वीजी उपाश्रय में देरी से आई, तब चंदनबाला साध्वीजी ने मृगावती साध्वीजी को ठपका देते हुए इतना ही कहा, **``तुम्हारे जैसी कुलीन के लिए रात्रि में इतनी देरी से आना उचित नहीं है ।''**

यद्यपि भूल सामान्य थी, परंतु मृगावती को अपनी भूल का तीव्र पश्चात्ताप हुआ । चंदनबाला साध्वी तो सो गई थी, परंतु आँख से आँसू बहाते हुए मृगावती बोली, **``हे भगवती ! आप मेरे अपराध को क्षमा करें । मैं मंदभागी हूँ ! निष्कारण ही मैंने आपके दिल को दुखाया ।''** इस प्रकार बार-बार पश्चात्ताप करती हुई मृगावती को वहीं पर केवलज्ञान हो गया ।

इसी बीच मृगावती ने काले सर्प को आते हुए देखा तो मृगावती ने चंदनबाला का हाथ वहाँ से हटा दिया । उसी समय चंदनबाला जग गई ।

उन्होंने कहा, **``मेरा हाथ क्यों हटाया ?''**

मृगावती ने कहा, **``यहाँ से सांप जा रहा था ।'' ``इस अंधेर में तुम्हें कैसे पता चला'' ?**

ज्ञान से !

कौन से ज्ञान से ?

केवलज्ञान से !

यह सुन चंदनबाला को पश्चात्ताप हुआ, **``अहो ! मैंने केवली की आशातना की ।''** इस प्रकार पश्चात्ताप करते उन्हें भी केवलज्ञान हो गया ।

मृगावती साध्वीजी ने यदि चंदनबाला का वाग्बाण से प्रतिकार किया होता तो किसी को केवलज्ञान नहीं होता ।

अनुग्रहकृपा और निग्रहकृपा

जिस शिष्य पर गुरु प्रसन्न होते हैं, उस पर अनुग्रह कृपा करते है । विनम्र शिष्य पर गुरु की अनुग्रह कृपा होती है ।

गुरु की अनुग्रह कृपा तो सभी शिष्यों पर होती है, परंतु गुरु की निग्रह कृपा तो पूर्ण समर्पित शिष्य पर ही होती है ।

दंड, ताड़न, तर्जना आदि द्वारा गुरु की **निग्रह कृपा** होती है ।

शिष्य से भूल हो जाय और गुरु कठोर दंड भी करे तो भी शिष्य के मुख की रेखा भी न बदले, गुरु के निग्रह को भी प्रसन्नपूर्वक स्वीकार करे ऐसा शिष्य धन्यवाद का पात्र है ।

'प्रशमरति' में कहा है–

''अयोग्य आचरण की गर्मी को दूर करने के लिए गुरु के मुख रुपी मलयाचल पर्वत से निकले वचन रुपी सरस चंदन का स्पर्श धन्य आत्मा को ही होता है ।''

समर्पित शिष्य गुरु के कठोर वचनों को मलयाचल पर्वत के शीतल सुगंधित पवन तुल्य मानता है ।

गुरु के ठपके से शिष्य लेशमात्र भी आकुल-व्याकुल नहीं होता है । मन में गुरु के प्रति दुर्भाव नहीं करता है । गुरु के कठोर वचन को भी हितकारी ही समझता है ।

गुरु के प्रति आदर-भाव

बहुश्रुत गुरु के प्रति आदर भाव होना ही चाहिए, परंतु पूर्व के कर्म के उदय से गुरु अल्पज्ञानी हो और शिष्य महाप्रज्ञावान हो जाय तो भी शिष्य को अपने गुरुदेव के प्रति पूर्ण आदर भाव, समर्पण भाव होना चाहिए ।

केवलज्ञान हो जाने के बाद भी शिष्य अपने छद्मस्थ गुरु की आदरपूर्वक सेवा करता है ।

केवलज्ञान होने के बाद भी पुष्पचूला साध्वी अपने गुरु अर्णिकापुत्र आचार्य की भक्ति छोड़ती नहीं हैं ।

सुयोग्य शिष्य यही मानता है कि मुझे जो कुछ भी ज्ञान मिला है, वह सब गुरुकृपा से ही मिला है । अतः उसे अपने ज्ञान का लेशमात्र भी अभिमान नहीं होता है ।

गुरु से अधिक ज्ञान पाने के बाद जो शिष्य गुरु की हीलना करते हैं, गुरु का अनादर अपमान करते हैं उस शिष्य का पतन ही होता है । तारक परमात्मा तो निर्वाण प्राप्तकर मोक्ष में गए हुए हैं, फिर भी उनकी पाषाण, पंच धातु या रत्न आदि की प्रतिमा में परमात्म-भाव का आरोपण करके साक्षात् परमात्मा की भक्ति का लाभ प्राप्त कर सकते हैं, उसी प्रकार गुरु भले ही अल्पज्ञानी व अल्पगुणी हो, फिर भी उनमें सर्व गुण संपन्नता के भाव का आरोपण कर महान् लाभ प्राप्त कर सकते हैं ।

गुरु गुण संपन्न हो या न हो, परंतु शिष्य यदि उनमें गुण संपन्नता का आरोपण करता हो तो उसे अवश्य लाभ होता है ।

❁ ***साक्षात् गौतमस्वामी जैसे गुरु की प्राप्ति सभी को नहीं होती है, परंतु अपने को मिले गुरु में गौतमस्वामी का आरोपण तो कर सकते हैं ।***

❁ जो अपने गुरु को परमात्म तुल्य मानता है, उसे आगामी भवों में साक्षात् परमात्मा गुरु के रुप में प्राप्त होते हैं ।

❁ **भूल से गुरु का अविनय हो जाय तो तत्काल मन में पश्चात्ताप भाव लाकर ``मिच्छा मि दुक्कडम्'' देना चाहिए । यथायोग्य प्रायश्चित्त ग्रहण करना चाहिए ।**

❁ जिस प्रकार प्रभु की भक्ति उत्तम द्रव्यों से करने का विधान है, उसी प्रकार गुरु की भक्ति भी उत्तम द्रव्यों से करनी चाहिए ।

❁ **न तो गुरु की निंदा करनी चाहिए और न ही गुरु की निंदा सुननी चाहिए ।**

❁ गुरु की सेवा स्वयं करनी चाहिए, न कि अन्य के पास करानी चाहिए ।

गुरुभक्ति के प्रभाव से शिष्य को जो अनेक प्रकार की लब्धियाँ पैदा होती हैं वह तो गुरुभक्ति का आनुषंगिक फल है, वास्तव में तो गुरुभक्ति का पूर्ण फल मोक्ष की प्राप्ति है ।

शिष्य के जीवन में जो भी ज्ञान का विकास है, चारित्र का विकास है, वह सब गुरु भक्ति का ही प्रभाव समझना चाहिए ।

अपने अभिमान का सर्वथा त्याग करके शिष्य बनकर गुरु से शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए ।

चंदाविज्झय पयन्ना में कहा है–

``जो सच्चा शिष्य बनता है, उसी के शिष्य होते हैं । जो सच्चा शिष्य नहीं बना है, उसे गुरु बनने का अधिकार नहीं है ।''

आपत्ति के समय में जलपान करानेवाले के भी उपकार का बदला चुकाना कठिन है तो, जो गुरु शिष्य को भवसागर से पार उतरने की साधनभूत रत्नत्रयी प्रदान करते हैं उन गुरु के उपकार का बदला तो कैसे चुकाया जा सकता है ।

समर्पण-भाव

गौतम स्वामीजी की गुरु भक्ति अनुपम थी । उनके हृदय में गुरु के प्रति उत्कृष्ट बहुमान भाव था । उन्होंने अपना अस्तित्व गुरु में विलीन कर दिया था । वे प्रभु की हर आज्ञा को अत्यंत नम्रता से बालक की तरह सुनते थे ।

इस गुरुभक्ति के फलस्वरुप ही उन्हें ऐसी लब्धि प्राप्त हुई थी कि वे जिसे दीक्षा देते उसे केवलज्ञान हो जाता था । स्वयं के पास केवलज्ञान नहीं था, फिर भी उनके वरद्-हस्तों से दीक्षित साधु को केवलज्ञान हो जाता था ।

गुरु की ओर से आज्ञा-आदेश प्राप्त होने पर समर्पित शिष्य सोचता है कि ``मेरे गुरुदेव के अनेक शिष्य विद्यमान होने पर भी गुरुदेव मुझे आज्ञा करते हैं, यह मेरा परम सौभाग्य है ।''

शिष्य का जीवन मंत्र

जिस प्रकार एक पतिव्रता नारी अपनी सारी प्रवृत्ति पति को खुश करने के लिए करती है, उसी प्रकार एक समर्पित शिष्य भी अपनी सारी प्रवृत्ति गुरु को खुश करने के लिए करता है ।

गुरु की इच्छा को वह प्राधान्य देता है । गुरु की इच्छा को अपनी इच्छा मानता है ।

जिस प्रवृत्ति से गुरु नाराज होते हों, जो प्रवृत्ति गुरु को पसंद न हो, समर्पित शिष्य ऐसी कोई प्रवृत्ति नहीं करता है । ' गुरु की इच्छा' यही समर्पित शिष्य का जीवन मंत्र होता है ।

आज तक भूतकाल में अपनी आत्मा ने स्वेच्छानुसारी प्रवृत्ति तो खूब की है, परंतु अब अपनी इच्छाओं को गौण कर गुरु की इच्छानुसार प्रवृत्ति करने में ही सच्चा आत्महित रहा हुआ है ।

नवकारसी का पच्चक्खाण लेने के लिए आए **पूज्य मुनिश्री त्रिलोचनविजयजी** को उनके गुरुदेव ने कहा, **''तुझे नवकारसी नही, 16 उपवास करने हैं ।''**

और उसी समय मन में लेश भी विकल्प किए बिना मुनिश्री ने 16 उपवास का पच्चक्खाण कर लिया ।

धन्य है ऐसे शिष्यों को, जो गुरु की इच्छापूर्ति के लिए अपनी इच्छा को सर्वथा गौण कर देते हैं ।

संपूर्ण समर्पण ही दीक्षा है

मात्र वेश परिवर्तन करना, यह कोई जैन दीक्षा नहीं है । जैन दीक्षा का अर्थ है अपने मन, वचन और काया के योगों का गुरुचरणों में समर्पण करना ।

भगवान महावीर के दामाद जमालि ने प्रभु महावीर के पास भागवती दीक्षा अंगीकार की थी । वे ग्यारह अंगों के धारक भी बने थे, परंतु एक बार प्रभु के एक वचन **(कडेमाणे कडे)** में संदेह रखने के कारण सम्यक्त्व से भ्रष्ट हो गए । प्रभु के संघ से बहिष्कृत हुए और पहले **निह्नव** कहलाए । उन्होंने अपना संसार बढ़ा लिया ।

इसी प्रकार प्रभु से वाद के लिए आए गौतमस्वामी अपने गुरुसमर्पण- भाव के कारण सिद्धि के शिखर पर पहुँच गए और 1000 के साथ वैराग्य से दीक्षा लेनेवाले जमालि प्रभु के एक वचन के प्रति शंकाशील होने से सम्यक्त्व से भी पतित हो गए ।

सुयोग्य शिष्य का मन भी गुरुचरणों में समर्पित होता है, अतः वह हमेशा सोचता है, ``**गुरुदेव जो भी करेंगे, वह मेरे हित के लिए ही करेंगे ।**''

संयम जीवन का प्राणः गुरु-समर्पण

प्राण रहित देह की क्या कीमत है ? मनुष्य जींदा है, तब तक उसके देह की कीमत है । प्राण निकल जाने के साथ ही उसे जलाकर खाक कर दिया जाता है ।

❁ वृक्ष का अस्तित्व भी उसके मूल को ही आभारी है । वृक्ष की जड़ मजबूत हो तो वह वृक्ष सैकडों वर्षों तक हरा भरा रहता है, परंतु जड़ ही काट दी जाय तो उस वृक्ष को सूखते देर नहीं लगती है ।

बस, इसी प्रकार देव दुर्लभ ऐसे श्रमण जीवन की सफलता सद्गुरु के प्रति रहे समर्पण भाव में है ।

❁ शिष्य में अन्य ढेर सारे गुण हो परंतु **'गुरु समर्पण भाव'** का अभाव हो तो उसका संयम जीवन **'प्राण रहित कलेवर'** की भांति निष्फल है ।

'पंचसूत्र' में कहा हैं–

'आयओ गुरु बहुमाणो अवंझ कारणत्तेण' ।

'सद्गुरु के प्रति रहा समर्पण भाव मोक्ष का अवंध्य कारण है ।'

❁ जैन शासन में **'गुरु'** तत्त्व की खूब खूब महिमा है । देव-गुरु और धर्म स्वरुप तत्त्वत्रयी के केन्द्र में गुरु तत्त्व रहा है ।

❁ देव (अरिहंत) तत्त्व का अस्तित्व जगत् में सदाकाल नहीं रहता है ।

केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद अरिहंत परमात्मा **'भावतीर्थंकर'** कहलाते है । उसके बाद उनका अस्तित्व मर्यादित समय के लिए होता है । ऋषभदेव प्रभु भाव तीर्थंकर के रुप में 1000 वर्ष न्युन 1 लाख पूर्व वर्ष तक रहे, जब कि उनके द्वारा स्थापित शासन 50 लाख करोड सागरोपम तक रहा ।

❁ **इतने दीर्घ काल तक शासन को चलाने की जवाबदारी गुरु भगवंत के ऊपर ही थी ।**

❁ परोक्ष ऐसे देव तत्त्व का बोध गुरु तत्त्व के माध्यम से ही होता है ।

❁ **आत्मा के स्वभाव रुप धर्म को समझाने का कार्य भी गुरु ही करते है ।**

❁ ऐसे सद्गुरु का योग महान् पुण्योदय से प्राप्त होता है ।

❁ **धन, सत्ता, पुत्र, परिवार और चक्रवर्तीपने की प्राप्ति सुलभ है, परंतु सद्गुरु का योग अत्यंत दुर्लभ है ।**

इसीलिए तो **'प्रार्थना सूत्र'** में प्रभु से मांग की गई हैं कि **'मुझे सद्गुरु का योग हो'** और जब तक मेरा मोक्ष न हो तब तक सद्गुरु की आज्ञा पालन का बल प्राप्त हो ।

❁ ❁ ❁ ❁ ❁ ❁

हे पुण्यात्मन् !

जरा आत्मा निरीक्षण करो !

जिस समय तुमने भागवती दीक्षा अंगीकार की थी, उस समय तुम्हारे अन्तर्मन में अपने गुरु के प्रति कैसा **'सद्भाव'** था । अपने गुरुदेव में तुम्हें **'भवोदधि त्राता'** के दर्शन होते थे ।

❁ लेकिन धीरे धीरे समय बीतता है और शिष्य सावधान न रहे तो **'मोहराजा'** उसके ऊपर हमला कर देता है और शिष्य के हृदय में धीरे धीरे गुरु समर्पण भाव में मंदता आने लगती है ।

❁ आगे चलकर वो ही शिष्य **'गुरु के दोष देखने लग जाता है ।'** गुरु के प्रति रहा बहुमान भाव, अनादर भाव में बदल जाता है ।

गुरु के प्रति रहा अनादर भाव आत्मा के अधःपतन का कारण है ।

अतः देव दुर्लभ ऐसे मानव भव और उसमें भी दुर्लभता से प्राप्त संयम जीवन को सफल बनाना हो तो अपने जीवन में **'सद्गुरु समर्पण भाव'** गुण को विकसित करने का प्रयत्न करना चाहिये ।

❁ **गुरु की अवज्ञा-आशातना के फलस्वरुप महातपस्वी कुलवालक मुनि संयम से भ्रष्ट बन गए और दीर्घसंसारी बन गए ।**

❁ विषपान से तो एक ही जीवन का अंत आता है, परंतु गुरु की

अवज्ञा-आशातना से आत्मा को अनेक भवों तक बूरी मौत से मरना पडता है ।

❁ उपदेशमाला, चंदाविज्जय पयन्ना, गुरु तत्त्व विनिश्चय, धर्मबिंदु तथा पंचाशक आदि ग्रंथों में **'गुरु समर्पण भाव'** की महिमा का खूब खूब गान किया गया है ।

❁ **'आज्ञा गुरुणां हि अविचारणीया' 'गुरु आणाए मुक्खो'** आदि अनेक अनेक सूत्रों के माध्यम से **'सद्गुरु समर्पण भाव'** की हमें अपूर्व प्रेरणा मिलती है ।

❁ **'गुरु समर्पण भाव'** से शिष्य वह प्राप्त कर सकता है, जो शायद गुरु के पास भी न हो !

❁ गुरु के अनुशासन-आज्ञा को जो शिष्य स्वीकार नहीं करता है, वह शिष्य, शिष्य कहलाने के लिए योग्य नहीं है ।

❁ **सच्चा शिष्य वही हैं, जो गुरु की आज्ञा को आदर व बहुमान पूर्वक स्वीकार करता है ।**

❁ वह शिष्य धन्यवाद का पात्र हैं, जिसके हृदय में गुरु का वास हैं, परंतु वह शिष्य धन्यातिधन्य है, जो गुरु के हृदय में बसा है ।

❁ **शिष्य की भूल होने पर, जिस गुरु को ठपका देते हुए डर लगता है, वह शिष्य भी धिक्कार के पात्र है ।**

❁ समर्पित शिष्य गुरु के ठपके को भी मलयाचल पर्वत के शीतल व सुगंधित पवन तुल्य समझता है ।

❁ **महाविदेह क्षेत्र में करोड पूर्व वर्ष का आयुष्य है, वहां दीक्षा लेनेवाले को करोडपूर्व वर्ष तक सावधानी की अपेक्षा रहती हैं, उस अपेक्षा से हमारा आयुष्य, संयम पर्याय तो बहुत ही अल्प है ।**

परंतु इस अल्प संयम पर्याय में भी **'गुरु समर्पण भाव'** के माध्यम से हम वह प्राप्त कर सकते हैं, जो महाविदेह क्षेत्र में करोडों वर्ष के संयम पर्याय से प्राप्त होता है ।

समर्पण का स्वरुप

❁ मेरे गुरुदेव मेरे लिए भगवान है । उनकी आज्ञा ही मेरे लिए सर्वस्व है, प्राण है ।

❁ **छद्मस्थ गुरु में भी भगवान के दर्शन करना, यह समर्पण की पराकाष्ठा है ।**

❁ गुरु मुझे जो आज्ञा करते है, वह मेरे हित के लिए ही करते हैं–ऐसी दृढ श्रद्धा का नाम ही समर्पण भाव है ।

❁ सच्चे शिष्यत्व में किसी प्रकार की शिकायत नहीं होती है । वहां एक मात्र समाधान ही होता है । **'गुरु ने मेरे लिए क्या किया ?'** इस प्रश्न को भूलकर `मैंने गुरु के लिए क्या किया ?' यह प्रश्न याद रखने जैसा है ।

❁ **गुरु की भक्ति का अर्थ है–गुरु के चित्त के अनुसार वर्तन करना ।**

भक्ति में भी अति आग्रह या जिद नहीं होनी चाहिए ।

❁ जिनके वचन पालन में किसी प्रकार का Option नहीं है, उसी का नाम गुरु है । गुरु की इच्छा को भी `आज्ञा' जितना ही भार देना चाहिए ।

❁ **संयम की साधना का मुख्य आधार गुरु पारतंत्र्य है । संयम की समस्त साधना गुरु के अधीन रहकर करने की है ।**

❁ 42 दोष से रहित गोचरी भी गुरु को बताकर ही वापरने की आज्ञा है । गुरु को न बताए तो वह भी चोरी है ।

❁ **गुरु को पूछे बिना अलग प्रतिक्रमण करना भी चोरी है ।**

❁ संयम जीवन में आराधक भाव, गुरु पारतंत्र्य में ही रहा हुआ है ।

द्वितीय पंचसूत्र में कहा है–

`गुरु बहुमान–गुरु समर्पण के अभाव में होनेवाला संयम की सभी शुभ क्रियाएं भी असंयम को बढानेवाली है ।

समर्पण ही शिष्य का सच्चा स्वरुप है । जहां समर्पण का अभाव है, वहां शिष्यत्व का समापन ही है ।

कल्पसूत्र में साधु की सामाचारी का वर्णन है । इस सब सामाचारी कर रहस्य यही है कि शिष्य को अपनी सारी प्रवृत्ति गुरु को पूछकर करनी चाहिए ।

षोडशक ग्रंथ में भी कहा हैं–

'आज्ञा के पालन में ही धर्म है और आज्ञा की विराधना में ही अधर्म है ।'

❄ जो शिष्य स्वतंत्र-स्वच्छंद आचरण करता हैं, ऐसे शिष्य को गुरु को त्याग कर देना चाहिए ।

पुष्पमाला में कहा हैं–

❄ **छंदेण वहमाणो, सीसो छंदेण मुत्तत्वो ।**

❄ जो शिष्य संपूर्णतया स्वच्छंद मनोवृत्ति का हो, उस शिष्य का त्याग करने में ही हित रहा हुआ है ।

❄ **एक मछली तालाब को गंदा करती है, उसी प्रकार एक कुशिष्य साधु समुदाय को दूषित करता है ।**

दूसरे **'पंचसूत्र'** में शिष्य का लक्षण बताते हुए बहुत ही सुंदर बात कही है ।

शिष्य अर्थात्–**आणाकंखी, आणा पडिच्छगे, आणा अविराहगे, आणा निप्फायगे ।**

शिष्य अर्थात् जो गुरु की आज्ञा की सतत अभिलाषा करता है ।

गुरु की आज्ञा में अपना अहोभाग्य समझता है । मैं भाग्यशाली हूँ कि गुरुदेव ने मुझे आज्ञा की । गुरु शिष्य को याद करे, यह शिष्य का सबसे बडा अहोभाग्य है ।

वह शिष्य कमभागी हैं जिसे आज्ञा करने में गुरु हिचकिचाते है ।

(1) शिष्य वह हैं, जो गुरु की आज्ञा को अच्छी तरह से स्वीकार करता है ।

(2) निकट मोक्षगामी आत्मा को गुरु की आज्ञा में आनंद की अनुभूति होती है ।

(3) शिष्य वह है जो गुरु की आज्ञा की कभी विराधना नहीं करता हैं अर्थात् आज्ञा के उल्लंघन में वह खूब भयभीत होता है ।

(4) शिष्य वह है जो गुरु की आज्ञा का अच्छी तरह से पालन करता है । गुरु की आज्ञा के प्रति खूब जागरुक रहता है ।

आसन्न सिद्धिक आत्माओं को गुरु की आज्ञा में प्रभु की आज्ञा के दर्शन होते हैं ।

गुरु से प्रतिकूल आचरण करने वाला शिष्य दुष्ट बैल जैसा होता है । जिसे हांकने में गुरु भी थक जाते हैं । ऐसे शिष्य गुरु को प्राप्त करके भी अपना भावी अनंत संसार खडा कर देते हैं ।

गुर्वाज्ञानुसार प्रवृत्ति

सुयोग्य शिष्य जो भी प्रवृत्ति करता है, वह गुरु की आज्ञा प्राप्त करके ही करता है ।

श्वासोच्छ्वास और शरीर को खुजलाने जैसी छोटी-छोटी सूक्ष्म प्रवृत्तियों को करने के पूर्व गुरु से अनुज्ञा प्राप्त करना शक्य नहीं है, इसलिए उन छोटी छोटी प्रवृत्तियों की अनुज्ञा प्राप्त करने के लिए सुयोग्य शिष्य प्रतिदिन अपने गुरुदेव के पास **''बहुवेल संदिसाहुं ?''** और **''बहुवेल करशुं''** के दो आदेश मांगता है ।

ये दो आदेश माँगने का यही अर्थ है कि श्वासोच्छ्वास जैसी क्रियाओं को छोड़कर अन्य सभी क्रियाएँ गुर्वाज्ञानुसार ही करनी चाहिए ।

❁ गुरु को पूछे बिना चुपके से जो प्रवृत्ति की जाती है, उसमें लाभ के बजाय परिणाम में नुकसान ही होता है ।

❁ **जिनके हृदय में गुरु का वास है, वे शिष्य धन्यवाद के पात्र हैं, परंतु जो शिष्य गुरु के हृदय में बसता है, वह तो धन्यातिधन्य है ।**

❁ सद्गुरु योग्य शिष्य को आचार्य आदि पद प्रदान कर योग्य सम्मान देते ही हैं, परंतु अयोग्य शिष्य उस सम्मान के पाने के लोभ से अपनी आत्मा का भयंकर अनर्थ कर लेता है ।

❄ **वराह मिहिर को आचार्य पद नहीं मिला, उन्होंने दीक्षा ही छोड दी । मरकर देव बने और संघ पर भयंकर उपसर्ग किया ।**

❄ आर्यरक्षितसूरिजी ने गच्छनायक का पद गोष्ठामाहिल को न देकर दुर्बलिका पुष्यमित्र को दिया ।

गोष्ठामाहिल नाराज हो गए । गुरु के प्रति नाराजगी के कारण आखिर संघ से बहिष्कृत हुए और निह्नव हुए ।

❄ **आचार्यपद के लोभ से बालचंद्र मुनि ने अजयपाल को वश किया और जैन संघ को भयंकर हानि पहुँचाई ।**

इस प्रकार गुरु के प्रति हृदय में बहुमान का अभाव यह शिष्य का भावमरण ही है । गुरु की आराधना ही सर्वश्रेष्ठ अमृत है और गुरु की विराधना ही भयंकर जहर है, जो आत्मा का भयंकर पतन कराता है ।

❄ गुरु की आशातना से कुलबालक मुनि संयम से भी भ्रष्ट बने ।

धन, स्त्री, पुत्र व शरीर सुख के साधन नहीं हैं, परंतु उन पदार्थों के प्रति मन में जब तीव्र राग भाव होता है तो मानव उन पदार्थों की प्राप्ति में सुख की कल्पना करता है ।

स्त्री के प्रति राग हो तो स्त्री सुख का साधन लगती है, परंतु उसी पर वैराग्य आ जाय तो स्त्री की प्राप्ति में सुख की कल्पना नहीं होती है ।

धन पर राग, ममता, मोह हो तो उसकी प्राप्ति में सुख की कल्पना होती है, परंतु धन का राग भाव दूर हो जाय तो उसी धन को फेंकने का मन हो जाता है ।

इस जगत् में सर्वश्रेष्ठ यदि कोई है तो वे अरिहंत परमात्मा हैं । उनके प्रति हृदय में तीव्र राग भाव, आदर भाव, बहुमान भाव पैदा हो जाय तो उनकी प्राप्ति में परम आनंद का अनुभव हो सकता है ।

अनेक महान् कवियों ने प्रभु की प्राप्ति में परम आनंद की अनुभूति की है । प्रभु की प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ उपाय है गुरुबहुमान । **पंच सूत्र** में ठीक ही कहा है ।

''अओ परम गुरु संजोगो तओ सिद्धि असंसयं ।'' सद्गुरु

बहुमान से परम गुरु परमात्मा का संयोग प्राप्त होता है और परम गुरु के योग से अवश्य ही मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

साधनामार्ग में सबसे अधिक बाधक कषाय यदि कोई है तो मान कषाय ! यह अहंकार भाव जब तक मन में जीवित रहता है, तब तक जीवन में गुरु-समर्पण भाव पैदा नहीं हो पाता है ।

अहंकार के नाश के लिए समर्पण जरूरी है और अपेक्षा से जीवन में ज्यों ज्यों गुरु समर्पण भाव पैदा होता है, त्यों त्यों अहंकार विलीन होता जाता है ।

टाटा की भट्टी में लोहा भी पिघल कर प्रवाही हो जाता है । 4000^0 सेंटीग्रेड के ताप में लोहे की घनता समाप्त हो जाती है ।

अपने भीतर रहे अहंकार को पिघलाने के लिए गुरु समर्पण भाव टाटा की भट्टी के समान है ।

साधना जीवन का प्राण गुरु बहुमान भाव है । यह भाव हृदय में पैदा होगा, तभी साधना का प्रारंभ और साधना की पराकाष्ठा प्राप्त हो सकेगी ।

देव अर्थात् परमात्मा के प्रति विनय बहुमान भाव सुलभ है, क्योंकि वे सर्वगुण संपन्न हैं ।

वर्तमानकाल में भी प्रभुदर्शन करते समय भक्त के हृदय में प्रभु के प्रति आदर-बहुमान भाव प्रत्यक्ष दिखाई देता है, परंतु गुरु तो छद्मस्थ होते हैं, अतः पूर्ण गुणी तो नहीं हैं, वे शिष्य की भूल होने पर उसे ठपका भी देते हैं, कठोर शब्दों में अनुशासन भी करते हैं, अतः गुरु के प्रति बहुमान भाव आना थोड़ा कठिन भी है ।

❊ ***परमात्मा के आगे हमारी उपस्थिति अल्प समय के लिए होती है, अतः थोड़े समय तक प्रभु का बहुमान आदि रखना तो भी सरल है, जबकि गुरु के साथ तो 24 घंटे रहने का है, रात-दिन उनकी सेवा करने की होती है, अतः गुरु के प्रति पूर्ण बहुमान भाव बनाए रखना थोड़ा कठिन है ।***

गुरु के प्रति विनय और बहुमान दोनों जरूरी है ।

विनय अर्थात् काया से नम्रता, वंदन, नमस्कार, हाथ जोड़ना, उनके आगमन पर खड़ा होना आदि ।

बहुमान अर्थात् हृदय में अत्यंत ही आदर भाव ।

विनय और बहुमान की चतुर्भंगी होती है–

(1) विनय भी हो और बहुमान भी हो–गौतम स्वामी में दोनों थे, वे प्रभु का विनय भी करते थे और उनके हृदय में महावीर प्रभु के प्रति पूर्ण बहुमान भाव भी था ।

(2) विनय हो परंतु बहुमान न हो–उदा. विनयरत्न मुनि । राजा की हत्या के ध्येय से दीक्षा लेनेवाले विनयरत्न मुनि में गुरु को खुश करने के लिए विनय था, परंतु उनके हृदय में गुरु के प्रति लेशमात्र भी बहुमान भाव नहीं था ।

(3) विनय न हो परंतु बहुमान भाव हो–शारीरिक दृष्टि से अशक्त व रोगी शिष्य गुरु का बाह्य विनय नहीं कर पाता है, परंतु उसके हृदय में गुरु के प्रति पूर्ण बहुमान भाव हो सकता है ।

(4) विनय भी न हो और बहुमान भी न हो–कुलवालक मुनि में अपने गुरु के प्रति विनय भाव नहीं था और उसके हृदय में बहुमान भाव भी नहीं था ।

विनय और बहुमान में प्रधानता बहुमान भाव की है । कारणवश बाह्य विनय न कर सके तो चल सकता है, परंतु हृदय में बहुमान भाव तो अवश्य ही होना चाहिए ।

हृदय में गुरु के प्रति बहुमानभाव न हो तो वह बाह्य विनय मात्र दंभ ही कहलाता है । ऐसे विनय का कोई अर्थ नहीं है ।

गुरुकृपा अर्थात् शिष्य के हृदय में विद्यमान गुरु के प्रति बहुमान भाव । यह बहुमान भाव जिस शिष्य के हृदय में होता है, उसका मोक्ष निश्चित है ।

3. निष्फल जीवन

जिस शिष्य के हृदय में वज्र की रेखा की भाँति, गुरू के प्रति भक्ति भाव नहीं है, उसका जीवन तो विडंबना मात्र ही है ।

जल की रेखा तुरंत मिट जाती है, परंतु वज्र की रेखा कभी मिटती नहीं है । गुरू के प्रति भक्ति भाव वज्र की रेखा की तरह होना चाहिए ।

हृदय में गुरू के प्रति पूर्ण बहुमान भाव हो तो शिष्य गुरू के द्वारा नहीं दी गई विद्याएँ भी आसानी से प्राप्त कर लेता है ।

❁ द्रोणाचार्य ने एकलव्य को धनुर्विद्या नहीं दी थी, परंतु एकलव्य के हृदय में गुरू के प्रति जो बहुमान भाव था, उस बहुमान भाव के फलस्वरुप गुरु द्वारा अप्रदत्त विद्याएँ भी प्राप्त कर सका ।

हृदय में गुरुभक्ति के अभाव में सभी साधनाएँ विडंबना मात्र अर्थात् कायकष्ट रुप हैं ।

चाहे जितना ज्ञान प्राप्त किया हो, चाहे जितना तप किया हो, चाहे जितना जप किया हो, चाहे जितना चारित्र पालन किया हो परंतु गुरुभक्ति के अभाव में सब निष्फल ही है ।

प्रत्यक्ष या परोक्ष में जो गुरु की निंदा करता है, भविष्य में उसे बोधि की प्राप्ति दुर्लभ हो जाती है ।

किसी की भी निंदा नुकसान-कारक ही है, परुतु गुरु की निंदा तो अत्यंत ही भयंकर है ।

गुरु-अविनय

(1) गुरु के पहले भोजन करना ।

(2) गुरु के आने पर अपने आसन से खड़ा नहीं होना ।

(3) गुरु की उपधि की प्रतिलेखना नहीं करना ।

(4) गुरु को पूछे बिना ही कोई कार्य करना ।

(5) गुरु के पूछने पर अपने आसन पर बैठकर ही गुरु को जवाब देना ।

(6) गुरु से ऊँचे आसन पर बैठना ।

गुरु के भाव को इशारे में समझनेवाला ही सच्चा शिष्य कहलाता है ।

सिर्फ बाह्य कार्य तो नौकर भी कर लेता है । नौकर धन की इच्छा वाला होता है, जबकि शिष्य निर्जरा की अपेक्षा वाला होता है ।

गुरु के मनोगत भावों को जानना सरल नहीं है, परंतु अशक्य भी नहीं है । निरंतर प्रयत्न और जागृति द्वारा गुरु के मनोगत भावों को भी आसानी से जाना जा सकता है ।

गुरुभक्ति के फलस्वरूप सर्वानुभूति और सुनक्षत्र मुनि गोशाले की तेजोलेश्या से मरकर भी अमर हो गए ।

''गुरु तत्त्व विनिश्चय'' ग्रंथ में महोपाध्याय यशोविजयजी म. कहते हैं–

''गुरु आणाए मुक्खो, गुरुप्पसाया उ अट्ठसिद्धिओ ।
गुरु भत्तीए विज्जा साफल्लं होइ णियमेणं ।।''

गुरु की आज्ञा पालन से मोक्ष होता है, गुरु की कृपा से आठ सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । गुरु की भक्ति से अवश्य ही विद्याएँ सिद्ध होती हैं । जिस प्रकार दीपक अपने प्रकाश से स्व-पर को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार गुरु भी रत्नत्रयी प्रदान कर शिष्य के मोह अंधकार को दूर करते हैं ।

अयोग्य शिष्य

गुरु की निंदा करनेवाला शिष्य गुरु को उद्वेग पैदा कराता है । उस शिष्य की मोक्षमार्ग में प्रगति रुक जाती है । **उपदेशमाला** में कहा है–

''थद्धा च्छिद्दपेही, अवण्णवाई सयंमई चवला ।
वंका कोहणसीला, सीसा उव्वेअग्गा गुरुणो ।।''

अभिमानी, गुरु के छिद्र देखनेवाला, अपनी इच्छानुसार प्रवृत्ति करनेवाला, वक्रस्वभाववाला तथा क्रोधी शिष्य गुरु को हमेशा उद्वेग ही पैदा कराता है ।

गुरू की निंदा करनेवाला इस लोक और परलोक में अनर्थ प्राप्त करता है ।

शास्त्र में कहा है–

''विषयों में तीव्र आसक्ति रखनेवाला और देव-गुरु की घोर आशातना करनेवाला दीर्घ संसारी होता है ।''

उदायी राजा की हत्या करने के अपने निजी स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए किसी ने भागवती दीक्षा अंगीकार की थी ।

गुरु को खुश करने के लिए उसने 12 वर्ष तक संयम पाला । गुरु का उत्कृष्ट विनय किया । उसके विनयगुण से खुश होकर गुरु ने उसका नाम ''विनयरत्न'' रखा ।

12 वर्ष के बाद गुरुदेव उसे उदायी राजा की पौषधशाला में अपने साथ ले गए । वहाँ अवसर देखकर उसने राजा की हत्या कर दी ।

इस प्रकार हृदय में माया रखकर जो गुरु का विनय करता है, गुरु भक्ति करता है, उसकी गुरुभक्ति आत्मा को संसार में ही डुबोती है । अतः गुरु की भक्ति सरल भाव से करनी चाहिए न कि दम्भ से ।

गुरु अवज्ञा का परिणाम

संभूतिविजय गुरुदेव की अवज्ञा करके भी सिंहगुफावासी मुनि चातुर्मास हेतु कोशा वेश्या के वहाँ पधारे ।

कोशा वेश्या को ख्याल आ गया कि ये मुनि गुरु की अवज्ञा करके पधारे हैं, अतः जैसे ही उसने महात्मा को चातुर्मास में रहने के लिए अपनी चित्रशाला वास भवन दिया, वहाँ रहे काम के चित्रों को देखते ही उनका मानसिक पतन चालू हो गया ।

युक्ति द्वारा कोशा वेश्या ने यदि उन्हें नहीं बचाया होता तो उनका पतन हुए बिना नहीं रहता ।

गुरु की आज्ञा का पालन करनेवाले स्थूलभद्र महामुनि अमर हो गये, जबकि ईर्ष्यावश होकर गुरु के वचन की अवज्ञा करनेवाले सिंहगुफावासी मुनि पतन के गर्त में डूब गए थे । हाँ ! वेश्या के बचाव के कारण वे पुनः बच गए !

4. श्रमण जीवन में केश लोच

जैन साधु का जीवन अर्थात् स्वाधीन जीवन । सिए हुए कपड़े पहनने का निषेध होने से साधु-जीवन में दर्जी की पराधीनता नहीं है तो दाढ़ी और मस्तक के बालों के लोच का विधान होने से हज्जाम की गुलामी नहीं है ।

बालों को काटा न जाय और लंबी-लंबी जटा रखी जाय तो उसकी सफाई का प्रश्न खड़ा होता है । बालों को साफ न किया जाय तो जूं आदि पड़ने की आशंका रहती है ।

बालों का मुंडन कराने में भी हज्जाम की पराधीनता रहती है ।

जैनसाधु जीवन में केशलोच की कष्टप्रद साधना है । जो बाल-युवा व वृद्ध सभी के लिए अनिवार्य साधना है । विश्व में किसी भी धर्म में ऐसी कठोरतम साधना नहीं है ।

तीर्थंकर परमात्मा भी जब मोहमाया के बंधनों को छोड़कर दीक्षा अंगीकार करते हैं, तब पंचमुष्टि लोच करते हैं । चार मुष्टि द्वारा अपने मस्तक के सभी बालों का तथा एक मुष्टि द्वारा अपनी दाढ़ी-मूँछ के बालों का लोंच करते हैं ।

इस लोच के द्वारा मात्र बाहर के बालों को ही नहीं उखाड़ना है, बल्कि इस लोच के साथ आत्मा में अनादि काल से घर कर गए कषायों को भी उखेड़ना है । सिर पर रहे बालों का लोंच करना यह द्रव्य मुंडन है, जब कि आत्मा में रहे कषायों का लोच करना भाव मुंडन है ।

केशलोच के लाभ

1) सत्त्व परीक्षा : केशलोच यह साधु जीवन के प्रवेश की अग्निपरीक्षा है । केशलोच के लिए अपूर्व सत्त्व चाहिए । सत्त्वहीन या कायर व्यक्ति लोंच की कष्टपद क्रिया को सहन नहीं कर पाता है ।

2) सहनशीलता में वृद्धि : साधु जीवन में स्वेच्छा से लोच कराने का विधान है । लोच कराने से सहनशीलता में वृद्धि होती है । सहनशील व्यक्ति ही लोच करा सकता है ।

3) देहममत्व का नाश : धन, पुत्र, परिवार आदि की ममता छोड़ना तो भी सरल है, परंतु देह की ममता को दूर करना अत्यंत ही कठिन कार्य है । लोच द्वारा अपने देह पर रही ममता का विसर्जन किया जाता है । देह पर तीव्र राग हो वह व्यक्ति सामने से देह के कष्टों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होगा ।

मृत्यु के समय देह की ममता का सर्वथा त्याग करने का होता है, केश लोच द्वारा देह की ममता का आंशिक त्याग होता है । आज आंशिक त्याग करनेवाला ही भविष्य में सर्वथा त्याग कर सकेगा । केशलोच द्वारा मृत्यु के कष्ट को हँसते-हँसते स्वीकार करने का अभ्यास होता है ।

दु:ख को हँसते मुँह सहन करना, यही साधुता का लक्षण है । केश लोच द्वारा इस साधना का Practical (प्रेक्टीकल) प्रयोग होता है ।

केशलोच द्वारा सिर्फ बालों को ही नहीं उखाड़ना है, बल्कि, उन बालों के साथ पाँच इन्द्रियों के विषयों तथा चार कषायों पर भी विजय प्राप्त करनी है ।

द्रव्य व भाव लोच की चार भंगियाँ हैं–

1) पहले भावलोच फिर द्रव्यलोच :– भाव से विरक्त बनी आत्मा दीक्षा लेकर द्रव्य लोच कराती है । जैसे-जंबुस्वामी ने दीक्षा के पूर्व ही, जो संसार से पूर्ण विरक्त थे, दीक्षा लेकर द्रव्य लोच भी कराया ।

2) पहले भाव लोच फिर द्रव्य लोच नहीं :– मरुदेवा माता ने भाव से चारित्र प्राप्त किया जिसके फलस्वरूप केवलज्ञान प्राप्त किया, तत्क्षण आयुष्य पूरा हो जाने से मोक्ष में चली गईं । उनके भाव से लोच हुआ, किंतु द्रव्य से नहीं हुआ ।

3) पहले द्रव्य लोच, फिर भाव लोच :– मात्र पेट भरने के उद्देश्य से भिखारी ने दीक्षा अंगीकार कर द्रव्य लोच कराया था, फिर हृदय में सद्भाव पैदा होने से उसने भाव लोच किया ।

4) पहले द्रव्य लोच, फिर भावलोच नहीं :– उदायी राजा की हत्या करने के लिए विनयरत्न ने दीक्षा अंगीकार कर द्रव्य लोच कराया । 12 वर्ष तक संयम भी पाला, लेकिन राजा की हत्या का ही ध्येय होने से भाव से लोच नहीं हुआ ।

5. पादविहार के फायदे

लोकोत्तर ऐसे जैन शासन के प्रणेता तारक तीर्थंकर परमात्माओं ने आजीवन सर्व पाप के त्याग की प्रतिज्ञा करनेवाले श्रमण भगवंतों के लिए पादविहार की अनुज्ञा फरमाई है ।

पाद-विहार के अनेक फायदे हैं–

1. जीवदया-पालन :– दीक्षा अंगीकार करते समय जैन श्रमण की यह दृढ़ प्रतिज्ञा होती है कि वे जीवन पर्यंत किसी भी जीव की हिंसा नहीं करेंगें, अन्य के पास हिंसा नहीं कराएंगे और हिंसा करनेवाले की अनुमोदना भी नहीं करेंगे । इस प्रतिज्ञा का पालन तभी संभव है, जब वाहन का सर्वथा त्याग किया जाय । मोटर, गाड़ी, रिक्शा, स्कूटर, साइकल आदि वाहनों में हिंसा रही हुई है । उस हिंसा के पाप से बचने के लिए **'पाद-विहार'** श्रेष्ठतम उपाय है । बीच मार्ग में चल रहे कीड़े-मकोड़े आदि प्राणियों की रक्षा, पादविहार से ही संभव है ।

2. अपरिग्रह व्रत का पालन :– दीक्षा लेते समय साधु की यह प्रतिज्ञा होती है कि वह अपने पास कुछ भी धन नहीं रखेगा । किसी भी वाहन द्वारा कहीं जाना हो तो उस यात्रा (Travelling) का मूल्य अवश्य चुकाना पड़ता है । बिना टिकिट लिये बस, ट्रेन में यात्रा संभव नहीं है । पादविहार में टिकिट लेने आदि की कोई झंझट नहीं रहती है ।

3. ब्रह्मचर्यव्रत में सहायक :– मौज-मजा व आनंद-प्रमोद के साधन ब्रह्मचर्य में बाधक गिने गए हैं । अनुकूलताओं के सेवन से राग भाव पुष्ट बनता है । कठोर जीवन पद्धति ब्रह्मचर्य पालन में सहायक है । पाद विहार में शारीरिक श्रम होता है । **'श्रम काम का नाशक है ।'** इस युक्ति के अनुसार विहार का कठोर श्रम करने से कामवासना पर भी नियंत्रण होता है ।

4. ममत्व त्याग :– एक ही नगर में लंबे समय तक रहने से मकान व वहाँ के निवासी लोगों के प्रति ममत्व भाव बढ़ना संभव है । परंतु

पादविहार की पद्धति में साधु को किसी एक गाँव या नगर में रहने का नहीं होता है । हमेशा स्थान बदलते रहते हैं, अतः ममत्व की संभावना कम रहती है ।

5. अनेक जिनमंदिरों के दर्शन :– पादविहार करने से बीच मार्ग में आनेवाले अनेक गाँवों के अनेक जिन मन्दिरों के दर्शन-वंदन आदि का लाभ मिल सकता है । छोटे-छोटे गाँवों के जैन संघों के साथ धार्मिकता का संबंध जुड़ता है ।

पाद-विहार द्वारा छोटे-छोटे गाँवों में भी साधु भगवंतों की स्थिरता होने से वहाँ के संघ को भी जिनवाणी श्रवण का अमूल्य लाभ प्राप्त होता है । इस प्रकार गाँव-गाँव में सद्धर्म का प्रचार होता है । अनेक आत्माओं में बोधि बीज का वपन होता है । जैनत्व के संस्कारों का सिंचन होता है ।

6. स्वाधीन जीवन पद्धति :– साधु जीवन अर्थात् स्वाधीन जीवन । वस्त्रों में सिलाई नहीं अर्थात् दर्जी की अपेक्षा नहीं । केशलोच होने से हज्जाम की अपेक्षा नहीं ।

सोने-चांदी-लोहे के बर्तन-आभूषण नहीं होने से सुनार, लुहार आदि की अपेक्षा नहीं । भिक्षा पद्धति से भोजन अतः रसोईघर व रसोइये की अपेक्षा नहीं । इस प्रकार हर तरह से स्वाधीन जीवन जीनेवाले जैन श्रमण के लिए पादविहार भी स्वाधीन जीवन को ही पुष्ट करता है ।

7. स्वास्थ्यलाभ :– पादविहार में शारीरिक श्रम रहा हुआ है । शारीरिक श्रम से भोजन भी जल्दी पचता है । इस प्रकार पादविहार की कष्टप्रद क्रिया शारीरिक आरोग्य को भी पुष्ट करती है ।

विहार यात्रा-अहिंसा यात्रा

वीर प्रभु की आज्ञा है, चातुर्मास सिवाय शेष काल में साधु वायु की तरह अप्रतिबद्ध होकर विहार करें ।

ठीक ही कहा है–**'बहता पानी निर्मला, पड़े सो गंदा होय ।**
साधु तो चलता भला, दाग न लागे कोय ।

तालाब का पानी गंदा होता है,

क्योंकि वह एक जगह पर पड़ा रहता है । नदी का पानी निर्मल होता है, क्योंकि वह सतत बहता रहता है ।

विहार यात्रा के माध्यम से सतत बहते हुए साधु का मन भी निर्मल होता है ।

असाढ़ी चातुर्मास काल में साधु को एक ही जगह रहने की आज्ञा है उसके पीछे भी मुख्यता अहिंसा धर्म के पालन की ही है ।

वर्षा ऋतु-प्रारंभ के साथ ही चारों ओर सूक्ष्म-त्रस जीव-जंतुओं की उत्पत्ति खूब बढ़ जाती है, उन जीवों की हिंसा से बचने हेतु साधु के लिए वर्षा ऋतु में विहार का निषेध है ।

चार दृष्टियाँ

संयम जीवन का आत्मिक आनंद पाने के लिए अपने जीवन में चार प्रकार की दृष्टि को विकसित करना चाहिए ।

1. आत्म दृष्टि :– अपनी हर क्रिया आत्मा के शुद्धिकरण के लिए है । देह को केन्द्र में रखकर नहीं, आत्मा को केन्द्र में रखकर सारी आराधना होनी चाहिए ।

2. सकारात्मक दृष्टि :– दुनिया में होनेवाली हर घटना को Positive Thinking से देखना चाहिए । इस दृष्टि से जीवन में हताशा नहीं आती है । **'जो होता है सो अच्छे के लिए ।'**

गोचरी मिले तो संयम वृद्धि और न मिले तो तपो वृद्धि ।

3. गुण दृष्टि :– हर व्यक्ति के जीवन में कुछ न कुछ गुण का विकास भी होता है, उसे देखने के लिए गुणदृष्टि चाहिए ।

गुण दृष्टि होगी तो सर्वत्र गुण दिखेंगे और दोष दृष्टि होगी तो सर्वत्र दोष ही दिखेंगें ।

4. तत्त्वदृष्टि :– तत्त्वदृष्टि से देखेंगे तो रोग भी उपकारक लगेगा- कर्मक्षय का साधन दिखेगा ।

संयमी की चार अवस्थाएं

1. बालक :– जाने-अनजाने में हुई भूलों के स्वीकार के लिए साधु को बालक जैसा बन जाना चाहिए । बालक की विशेषता होती है–वह हृदय से सरल होता है ।

2. युवा :– कर्मों से लडने के लिए और परीषहों को जीतने के लिए संयमी को सदैव युवा होना चाहिए ।

3. प्रौढ :– प्रौढ में गंभीरता होती है । संयमी को भी दूसरों के दोषों के प्रति प्रौढ बनना चाहिए ।

4. वृद्ध :– वृद्धावस्था में इन्द्रियां कमजोर हो जाती है । विषयों के उपभोग में संयमी को वृद्ध हो जाना चाहिए ।

न बोलने योग्य छह भाषा

1. आदेश की भाषा :– आराधना आदि करने के लिए साधु उपदेश की भाषा का प्रयोग करे, परंतु आदेश की भाषा का नहीं !

'श्रावक को मंदिर बनाना चाहिए, यह उपदेश की भाषा है ।'

'तुम मंदिर बनाओं ।' यह आदेश की भाषा है ।

2. आवेश की भाषा :– क्रोध आदि के आवेग में आकर जो शब्द बोले जाते है, उसका परिणाम अत्यंत ही कटु होता हैं–अतः आवेश में न बोले ।

3. आक्रोश की भाषा :– गुस्से में आकर जो शब्द बोले जाते हैं, वे खूब भयंकर होते है । गुस्से में न बोलने के शब्द बोल दिए जाते हैं ।

4. अभ्याख्यान की भाषा :– किसी के ऊपर झूठा आरोप नहीं लगाना चाहिए । चोरी न की हो, फिर भी किसी को चोर कहना **अभ्याख्यान** की भाषा है ।

5. आरंभ-समारंभ की भाषा :– बोलने से आरंभ-समारंभ को प्रोत्साहन मिले ऐसी भाषा भी नहीं बोलनी चाहिए ।

6. आग्रह की भाषा :– `ऐसा ही है' `ऐसा ही होगा ।' इस प्रकार के आग्रह वचन भी नहीं बोलने चाहिए ।

आशातना न करें

जिस प्रकार शत्रुंजय आदि स्थावर तीर्थ हैं तो साधु-साध्वी भी जंगम तीर्थ हैं । स्थावर तीर्थ की आशातना का कटु परिणाम होता है, उसी प्रकार जंगमतीर्थ की आशातना का भी परिणाम अत्यंत ही कटु होता है, अतः भूलकर भी साधु-साध्वी की आशातना व निंदा न करें ।

साधु की निंदा से नीच गोत्र कर्म का बंध होता है । जिसके फलस्वरुप अनेक जन्मों में हल्के कुल में जन्म लेना पड़ता है ।

◆ राधनपुर में एक आचार्य म. चातुर्मास कर रहे थे, किसी ने उनके नाम से एक पार्सल भेजा, उसमें सिर्फ हड्डियाँ थीं । पू. आचार्य म. को खेद हुआ । उसी दिन से राधनपुर की दशा बैठ गई । व्यापार धंधे आदि से भी राधनपुर टूट गया । साधुनिंदा का यह परिणाम ।

◆ बैंगलोर के एक भाई ने खूब धन कमाया । अपनी जन्म भूमि-राज. में वह खूब धन खर्च करने लगा । संघ में उसका वर्चस्व बढ़ गया । सब कुछ अच्छा था परंतु उसकी जबान तीखी थी । छोटी छोटी बात में किसी का अपमान कर देता, चातुर्मास में कुछ भी प्रोग्राम करना हो परंतु उसे पूछे बिना कुछ नहीं होता था ।

पैसे के जोर से पुरा गाँव दबा हुआ था-एक बार प्रवचन में ही साधु म. का घोर अपमान कर दिया । म.सा. को बड़ा दुःख हुआ...और उसके तीसरे दिन ही वह पागल हो गया ।

साधु की आशातना का यह कटु परिणाम था ।

◆ एक भाई ने किसी निर्दोष महात्मा को खूब सताया और उसके साथ ही उसे जीभ का लकवा हो गया ।

◆ निर्दोष महात्मा पर झूठा कलंक लगाने से महासती सीता कलंकित बनी ।

◆ पू. आत्मारामजी म. विहार करते हुए किसी गाँव में घर मालिक की अनुमति लेकर उसके घर में ठहरे । गोचरी वापरने की तैयारी कर रहे थे, तभी घर मालिक का बड़ा भाई आया और बोला, **'तुम हमारे घर में कैसे घुस गए-तत्काल बाहर निकल जाओ ।'**

पू. आत्मारामजी ने कहा, **'गोचरी वापरकर निकल जाएंगे ।'**

'नहीं ! अभी निकल जाओ ।'

पू. आत्मारामजी म. ने तैयारी की ओर वे जैसे ही घर से बाहर निकले वह घर गिर गया ।

सभी ने माफी मांगी । उन्हें लौटने के लिए विनती की परंतु **आत्मारामजी म.** ने कहा, **'अभी तो आना नहीं हो सकेगा-फिर कभी आएंगें ।'**

सद्गुरु की आशातना से गाँव के सभी कुओं का पानी खारा हो गया ।'

ईर्ष्या न करें

ईर्ष्या आदमी को भीतर से जलाती है । ईर्ष्या के कारण सारा आनंद समाप्त हो जाता है ।

सुखी होने का सुंदर मंत्र है–

ना किसी से ईर्ष्या, ना किसी से होड ।

मेरी अपनी मंजिले, मेरी अपनी दौड ।।

Be Positive No Negative

कभी भी सकारात्मक सोंचे, नकारात्मक नहीं !

सकारात्मक सोच होगी तो दुश्मन में भी गुण नजर आ जाएंगें और नकारात्मक दृष्टि होगी तो अपने मित्रों में भी दोष नजर आ जाएंगें ।

◆ जिसका आचरण अच्छा होता है, उसी के चरण पूजे जाते है ।

❄ **कडवी दवाई से शरीर के रोग नष्ट होते हैं परंतु पारस्परिक टूटे संबंधों को जोडने के लिए तो वाणी में मिठास ही चाहिए ।**

❄ तोता हरी मिर्च खाता हैं, फिर भी मीठा बोलता हैं और हम मीठा खाते हैं फिर भी कडवा बोलते है ।

❄ **कभी कभी भूल से भोजन करते समय जीभ चबा दी जाती हैं, परंतु थोडी सी Treatment से जीभ ठीक हो जाती है ।**

इसी जीभ से कटु शब्द बोलने से सामनेवाले के दिल पर जो घाव हो जाता है, उसे ठीक करने में वर्षों निकल जाते है, अतः सावधान रहे कटु शब्द बोलने में ।

❄ **10 घंटें काम करने में जिस शारीरिक शक्ति का व्यय होता है, उतनी शक्ति का व्यय सिर्फ 10 मिनिट के क्रोध से हो जाता है ।**

❄ Blood में Sugar बढ गई तो तकलीफ बढ जाएगी परंतु जबान में Sugar बढ गई तो निहाल हो जाओगे ।

❄ **बैल-भैंसे से आगे से सावधान रहे, क्योंकि वह सींग से प्रहार करता है, जबकि गधा पीछे से लात मारता है अतः पीछे से सावधान रहे, जबकि दुर्जन तो चारों ओर से हैरान करता है, अतः पूर्णतया सावधान रहे ।**

❄ जामन डालने से दूध जम जाता है, परंतु एसीड डालने से फट जाता है । द्वेष (क्रोध) का एसीड संबंधों में जहर डाल देता है ।

❄ **पौष्टिक भोजन से शरीर को पुष्टि मिलती है और स्वाध्याय से मन को पुष्टि मिलती है ।**

❄ पान पराग दांतों और आंतों को तथा शराब दिल और दिमाग को खराब करती है ।

एक ही माँ की कुक्षी से पैदा हुए चार बेटे होते हैं, परंतु सबका पुण्य एक समान नहीं होता है ।

एक गुरु के अनेक शिष्य होते हैं, परंतु सब का पुण्य एक समान नहीं होता है, अतः किसी की बढती देख ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए अथवा उसके दोष देखकर दूसरों के आगे उसकी निंदा नहीं करनी चाहिए ।

ईर्ष्या करने से अपना बचा हुआ पुण्य भी समाप्त हो जाता है ।

हृदय में प्रमोद भाव न हो तो गुरु पर भी आक्षेप लगाने का मन हो जाता है । **'गुरुदेव तो पक्षपात करते है, उसका बराबर ध्यान रखते है, मेरा नहीं ।'**

कभी मान-सन्मान कम मिले तो सोचना चाहिए मेरा पुण्य कमजोर है ।

अपने दोषों का चिंतन करने से ईर्ष्या भाव से बच सकते हैं ।

कई महात्मा ईर्ष्या के पाप के कारण अपने संयम जीवन को भी हार जाते हैं ।

❁ चार-चार मास तक उपवास करने वाले सिंह गुफावासी मुनि भी ईर्ष्या के पाप से बच नहीं पाए । स्थूलभद्र महामुनि की गुरुदेव द्वारा की गई प्रशंसा को वे सहन नहीं कर पाए । इसी के फल स्वरुप वे गुरुदेव का निषेध होने पर भी अपना पराक्रम बताने के लिए कोशा वेश्या के वहां चले गए, परंतु उन्हें वहां सफलता नहीं मिली ।

ईर्ष्या भीतरी आग है, जो हमारी मानसिक शांति को जलाकर खाक कर देती है ।

6. श्रमण-वेश की महिमा

श्वेत वस्त्र :– गृहस्थ के रंग बिरंगे वस्त्र राग और आसक्ति के सूचक है । गृहस्थों को रंगीन वस्त्र खूब अच्छे लगते हैं, जबकि साधु जीवन में सफेद वस्त्र सादगी के प्रतीक है ।

सफेद रंग शांति का सूचक है । प्राचीन काल में जब युद्ध विराम हो जाता, तब सफेद झंडा फरकाया जाता था । साधु सफेद वस्त्र धारण कर सांसारिक बाह्य पदार्थों के लिए युद्ध विराम की घोषणा करता है ।

गृहस्थों के अधिकांश झगडे धन-जमीन व स्त्री के लिए होते हैं, साधु जीवन में उन तीनों का जिंदगी भर के लिए त्याग होता है अतः युद्ध विराम की घोषणा है ।

विराम :– सफेद वस्त्र विराम End का सूचक हैं । जब जीवन का विराम हो जाता है, तब मुर्दे के ऊपर सफेद कफन ओढाया जाता हैं, साधु सफेद वस्त्र धारण कर सांसारिक जीवन को विराम देता है ।

साधु जीवन अर्थात् सांसारिक जीवन से मृत्यु (Civil Death) । साधु को संसार का कोई व्यवहार नहीं रहता हैं । किसी के वहां जन्म-मरण-विवाह हो तो साधु का उसका कोई संबंध नहीं ।

सफेद बाल :– वृद्धावस्था में बाल काले के सफेद हो जाते है । सफेद बाल भोगों से विराम पाने की सूचना देते है । अब जीवन में काले काम बहुत हो गए-ऊजले काम करो ।

दुर्भाग्य है कि आज का वृद्ध सफेद बाल को भी Dye कराकर काले कर देता हैं । वह चाहता है कि काले काम अभी बहुत बाकी रह गए है ।

वृद्धावस्था में शारीरिक शक्ति घट जाती है, अतः भोगों से विराम लेता है । साधु के सफेद वस्त्र भोग विराम के सूचक है ।

किसी की मृत्यु के बाद जो शोकसभा होती हैं, उसमें मुख्यतया सफेद वस्त्र पहिने जाते है । बहने भी सफेद साडी पहिनती है ।

साधु जीवन का स्वीकार अर्थात् विषय और कषायों की मृत्यु ! उनकी शोक सभा का प्रतीक है साधु के श्वेत वस्त्र ।

भोजन विराम :– गुजरात में भोजन के End में चावल परोसे जाते है, उसका रंग सफेद होता है ।

भोजन में जब चावल परोसे जाते हैं, तब भोजन का End आ जाता है ।

साधु जीवन के सफेद वस्त्र भोजन विराम के प्रतीक है ।

गृहस्थ का भोजन शक्ति व स्वाद के लिए होता है, जबकि साधु जीवन में भोजन सिर्फ शरीर को टिकाने के लिए होता है । उसमें शक्ति व आसक्ति को स्थान नहीं है ।

संस्कार रहित वस्त्र :– गुजराती में कहावत हैं–**'घाट करता घडामण मोंघी'** मार्केट में पेंट पीस की जितनी कीमत नहीं होती है, उससे भी अधिक कीमत सिलाई की होती है ।

गृहस्थ डिजाइन व फैशन से ही ऊंचा नहीं आता हैं जबकि साधु के वस्त्रों में किसी प्रकार का संस्कार या सिलाई नहीं होती है ।

साधु के अखंड वस्त्र, अखंड चारित्र के सूचक है ।

गृहस्थ का चारित्र टुकडों में भी हो सकता है ।

चार महिनें के लिए रात्रि भोजन का त्याग और फिर छूट ।

साधु के सभी व्रत जिंदगी भर के लिए होते है, बीच में किसी प्रकार की छूट नहीं ।

रजोहरण :– (Identity Card) गाडी चलाने के लिए लाइसेंस जरुरी है ।

दर्दी का ओपरेशन करने के लिए सर्जन की डिग्री जरुरी है ।

खेती-व्यापार आदि के लिए अनुभव जरुरी है उसी प्रकार साधु के लिए रजोहरण जरुरी है । रजोहरण का स्वीकार साधुता का स्वीकार है और रजोहरण का त्याग साधुता के त्याग का सूचक है ।

रजोहरण के स्वीकार के साथ लोक व्यवहार में मान-सन्मान खूब बढ जाता है ।

गृहस्थ अपने जीवन में चाहे जितना दान करे । सोने के मंदिर बनाए और रत्नों की प्रतिमा भरा दे ।

मासक्षमण करे या 180 उपवास कर ले, संघ उसका ज्यादा से ज्यादा बहुमान तिलक माला, श्रीफल, साफा, शॉल व मोमेंटों से कर देगा, परंतु उसके आगे खमासमणा कभी नहीं देगा, जबकि यह रजोहरण जिसके हाथ में होगा, वह चाहे गरीब का बेटा हो या चक्रवर्ती का बेटा हो, वह आठ साल का हो या अस्सी वर्ष का हो, पूरा संघ उसके चरणों में **पंचांग प्रणिपात खमासमणा** देगा !

किसी भी सभा में रजोहरण धारण करनेवाले का स्थान ऊंचा होगा ।

धनवान का स्थान, ऊंचे से ऊंची डिग्रीधारी का स्थान और सत्ताधीश का भी स्थान नीचे होगा, जबकि रजोहरण धारण करनेवाला का स्थान ऊंचा होगा ।

दुनिया में सर्वोच्च मान साधु को मिलता है ।

जो खमासमणा भगवान के आगे दिया जाता है, वही खमासमणा साधु के आगे दिया जाता है ।

इतने मान-सन्मान के साथ साधु की जवाबदारी भी खूब खूब बढ जाती है । साधु का खाना-पीना-बोलना-चलना-सोना-उठना-बैठना सब कुछ अलग होता है ।

देवता प्रभु के स्वर्णमय, रजतमय व रत्नमय समवसरण की रचना कर अपूर्व भक्ति कर सकते है ।

प्रभु के दोनों ओर चंवर ढोल सकते हैं, परंतु रजोहरण को हाथ में लेने का सौभाग्य उनका नहीं है ।

रजोहरण हाथ में आने के साथ ही मुमुक्षु अपना वेश परिवर्तन करता है, परंतु सिर्फ वेश ही नहीं बदलना है पूरा जीवन परिवर्तन करना है ।

बोलने का ढंग बदल जाता है बोलने में वचन गुप्ति और भाषा समिति का पालन । चलने में ईर्या समिति का पालन । खाने में ऐषणा समिति का पालन ।

मल-मूत्र के त्याग में पारिष्ठापनिका समिति का पालन !

आहार बहोरते समय 42 दोषों से बचने का प्रयत्न !

प्रतिक्रमण में क्षमापना के सूत्र

1. **इरियावहिय सूत्र ।**
2. **इच्छामि ठामि ।**
3. **सव्वस्सवि देवसिअ ।**
4. **श्रमण सूत्र अथवा वंदित्तु सूत्र ।**
5. **आयरिय उवज्झाय सूत्र ।**

क्रिया में सावधानी

1. **शुद्ध उच्चारण :–** एक अक्षर कम नहीं, एक अक्षर ज्यादा नहीं ।
2. **उपयोग शुद्धि :–** मन की एकाग्रता ।
3. **मुद्रा शुद्धि :–** जो सूत्र जिस मुद्रा में बोला जाता हो, उस मुद्रा में बोले ।
4. **आदर भाव :–** हृदय में पूर्ण आदर भाव होना चाहिए ।

अद्‌भुत समाधि

खरतरगच्छीया सा. श्री विचक्षणश्रीजी को भयंकर केंसर हो गया था परंतु उस केंसर की बीमारी में भी उनके मुख पर उदासीनता नहीं थी ।

खूब अद्‌भुत समाधि ।

तन में व्याधि मन में समाधि-उनका मंत्र था । उन्होंने मौत को भी मंगलमय बना दिया था ।

7. संयमी का गुण वैभव

क्षमा, तप, त्याग, विनय और वैयावच्च आदि ऐसे गुण है जो बाहर से भी दिखाई देते है, जब कि कुछ गुण ऐसे है जो बाहर से दिखाई नहीं देते है, परंतु साधना मार्ग में जिनका अत्यधिक महत्त्व है प्रत्येक संयमी को इन गुणों की प्राप्ति के लिए योग्य पुरुषार्थ करना ही चाहिए ।

(1) उत्साह :– उत्साह यह मन का विषय है । मन में उत्साह-उल्लास हो तो कुछ भी काम कठिन नहीं लगता है और उत्साह न हो तो छोटासा भी कार्य भारी लगता है ।

देवों को भी दुर्लभ ऐसी संयम धर्म की साधना का अवसर मिला है तो उसकी हर क्रिया में उत्साह, उल्लास और उमंग होना चाहिए ।

उत्साह से कार्य करनेवाला सामनेवाले को भी प्रोत्साहित कर देता है और निराशा और हताशा के साथ काम करनेवाला सामनेवाले के भी उत्साह को भंग कर देता है ।

(2) भवभीरुता :– अनादिकाल से आत्मा इस संसार में चारगति रुप संसार में भटक रही है ।

मानव भव ही एक ऐसा भव है, जिसमें संसार में परिभ्रमण के द्वार को बंद किया जा सकता है ।

अतः अब यदि संसार में नहीं भटकना है तो हृदय में भव भ्रमण का भय लगना चाहिए, जिसे संसार भ्रमण का भय नहीं है, उसकी साधना में कोई दम नहीं है ।

◆ अब मुझे संयम जीवन में ऐसी कोई प्रवृत्ति नहीं करनी है, जिससे मेरे भावी संसार की वृद्धि हो !

अब इस भवभ्रमण से मैं थक चूका हूँ, अब मुझे इस संसार में बिल्कुल नहीं भटकना है ।

(3) पाप भय :– संसार में जो भी दुःख है, ताप है, संताप है, उन सबका मूल पाप का आचरण है ।

दुःख का मूल पाप है, अतः दुःखी नहीं होना है तो अपने जीवन को पाप मुक्त बनाए ।

आज का पाप, भावी दुःख की आमंत्रण पत्रिका है ।

दुनिया पाप के फल दुःख से घबराती है, जबकि संयमी आत्मा दुःख के मूल पाप से घबराती है ।

दुःख से घबराना कायरता है, जबकि पाप से घबराना बहादुरी है ।

संयमी आत्मा को पाप का भय होना चाहिए, जो पाप करने में निर्भीक है, वह प्रभु के मार्ग से कोसों दूर है ।

(4) अविरति भय :– जिस प्रकार पानी के बिना मछली तडपती हैं, उसी प्रकार विरति के बिना सम्यग्दृष्टि आत्मा तडपती है ।

मछली पानी के लिए लालायित होती है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि आत्मा विरति पाने के लिए तडपती है ।

दुनिया पाप करनेवाले को ही पापी कहती है, जब कि जैन दर्शन पाप का पच्चक्खाण न करनेवाले को भी पापी कहती है ।

हिंसा आदि पाप के त्याग का पच्चक्खाण न होना, यह भी बहुत बडा पाप है । संसार में अविरति हैं, संयम में विरति है ।

सर्वविरति धर्म की प्रतिज्ञा स्वीकार करने के बाद अब जीवन में अविरति के द्वार नहीं खुलने चाहिए ।

(5) सहयोग वृत्ति :– स्वयं की साधना के साथ दूसरों की आराधना में सहयोग करना, यह भी बहुत बडा गुण है ।

मोक्ष मार्ग की आराधना-साधना में आगे बढने में हमें कइयों ने सहयोग किया है, अतः अपना भी एक परम कर्तव्य है कि हम भी किसी को आराधना में सहयोग करे । सिर्फ अपनी ही चिंता करना, अपना ही काम करना, स्वार्थवृत्ति है, जबकि दूसरों को भी सहयोग देना यह उत्तम गुण है ।

संयम जीवन में सहयोग वृत्ति होनी चाहिए । किसी कमजोर को ऊपर उठाने में भी हमारी उन्नति है ।

संयम जीवन में हमारे जो साथी है और कमजोर हैं, उन्हें सहयोग करना ही चाहिए ।

(6) वैराग्य वृद्धि :– संयम जीवन के स्वीकार समय हृदय में संसार, संसार के सुख और संसार के संबंधों के प्रति जो वैराग्य भाव था, समय बीतने पर उस वैराग्य भाव में वृद्धि होनी चाहिए ।

स्कूल में पढनेवाला बच्चा आज यदि 5th Class में होता है तो पांच वर्ष के बाद वह मेट्रिक में होता है । बस, संयम जीवन में भी पर्याय की वृद्धि के साथ वैराग्यभाव बढना चाहिए ।

गृहस्थ धन को सर्वस्व मानता है, अतः ज्यों ज्यों उसके धन की वृद्धि होती हैं, त्यों त्यों वह अपने आपको समृद्ध मानता है ।

गृहस्थ का वैभव धन को आभारी है । श्रमण जीवन की सच्ची समृद्धि उसकी गुण संपत्ति है ।

गुणों की वृद्धि से श्रमण का स्थान ऊंचा उठता है । व्यवहार में दीक्षा पर्याय की वृद्धि से श्रमण बडा माना जाता हैं, परंतु ज्ञानियों की दृष्टि में गुणों की वृद्धि में श्रमण का बडप्पन है ।

❁ **मासक्षमण करनेवाले मुनियों की उपेक्षा कर शासनदेवी कुरगडु मुनि को वंदन करने के लिए आगे बढी । कारण ?**

मासक्षमण के तपस्वी मुनि, तपस्वी जरुरी थे, परंतु उनके तप के साथ अहंकार जुडा हुआ था, अहंकार भाव के कारण उनका वह तप भी उनको साधना के शिखर तक न पहुँचा सका, जबकि कुरगडु मुनि सिर्फ नवकारसी का ही तप कर रहे थे, फिर भी उनके उस तप के साथ विनय भाव जुडा हुआ था, इस कारण वह नवकारसी का तप भी उन्हें साधना के शिखर पर पहुँचा सका ।

श्रमण जीवन की कीमत उसके श्वेत वस्त्रों से या संसार त्याग के कारण नहीं है, बल्कि उनके गुण वैभव से है । ज्यों ज्यों दीक्षा पर्याय बढता जाय त्यों त्यों उसका गुण वैभव बढता रहना चाहिए ।

(7) गुरु पारतंत्र्य :– संयम के स्वीकार का अर्थ है–अपने मन, वचन और काया के योग गुरु चरणों में समर्पित करना ।

कर्म के कारण संसार में अनेक प्रकार की पराधीनताएं स्वीकार की है ।

- नौकरी में शेठ की पराधीनता ।
- **ऑफिस में बोस की पराधीनता ।**
- घर में सास की पराधीनता ।
- **लग्न जीवन में पति की पराधीनता ।**
- कोर्ट में वकील की पराधीनता ।
- **हॉस्पीटल में डॉक्टर-नर्स की पराधीनता ।**
- विद्यार्थी जीवन में शिक्षक की पराधीनता ।
- **गाडी में ड्राइवर की पराधीनता ।**

व्यावहारिक जीवन में ये सब पराधीनताएं स्वीकार करनी पडती है, उसके बिना जीवन व्यवहार चल नहीं सकता ।

इन पराधीनताओं के स्वीकार में भौतिक लाभ रहा हुआ है ।

परंतु आध्यात्मिक लाभ के लिए तो गुरु की पराधीनता ही जरुरी है । इलेक्ट्रिक (Light) द्वारा बाहर के अंधकार को दूर किया जा सकता है, परंतु आत्मा के भीतर रहे अज्ञान व मोह के अंधकार को दूर करने के लिए तो गुरु की पराधीनता ही जरुरी है ।

गुरु की पराधीनता में ही श्रमण का संपूर्ण विकास छिपा हुआ है ।

तिजोरी की सुरक्षा ताले से है, परंतु ताले को भी चाबी का बंधन स्वीकार करना ही पडता है । जो ताला चाबी के अधीन नहीं है, उस ताले की कीमत ही क्या हैं ?

चाबी से ही तिजोरी में रहे खजाने को प्राप्त किया जा सकता है ।

गुरु तो चाबी है, जो आत्मा के भीतर रहे अमूल्य खजाने को प्राप्त कराते है । उनकी पराधीनता का स्वीकार किए बिना आत्मा का गूढ खजाना कभी प्राप्त नहीं हो सकता है ।

(8) विनय :– आत्मा के अमूल्य खजाने को प्राप्त कराने का मुख्य उपाय विनय गुण की साधना है । नमस्कार महामंत्र का **'नमो'** पद विनय गुण का ही प्रतीक है ।

प्रभु महावीर की अंतिम देशना स्वरुप उत्तराध्ययन सूत्र में भी पहला अध्ययन **'विनय अध्ययन'** ही है ।

दश वैकालिक सूत्र में भी **'विनय समाधि अध्ययन'** है ।

पंचसूत्र, योगशास्त्र आदि अनेक ग्रंथों का प्रारंभ भी 'नमो' पद अर्थात् विनय से ही है ।

विनय तो साधु जीवन का प्राण है, क्योंकि सभी गुण विनय के अधीन है ।

'प्रशमरति' में कहा है–**'विनयायत्ताश्च गुणाः'** इंजिन के चलने के साथ ही ट्रेन चलने लगती है । बस, जीवन में विनय गुण आने के साथ अन्य सभी गुण खींचकर चले आते हैं, अतः श्रमण जीवन में विनय गुण को आत्मसात् करने के लिए भरसक प्रयत्न करना चाहिए ।

विनय तो वह नींव है, जिसके आधार पर संयम का महल खडा है ।

जीवन में विनय नहीं है तो कुछ भी नहीं है । विनय से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है । ज्ञान से दर्शन, दर्शन से चारित्र और चारित्र से मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

(9) सरलता :– जाने-अनजाने में हुए अपने पापों की शुद्धि के लिए साधु जीवन में प्रतिदिन आलोचना प्रायश्चित्त करने का विधान है । सच्चा प्रायश्चित्त कौन कर सकता है ? जिसके जीवन में सरलता है ।

जिसके जीवन में माया-कपट है, वह कभी भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता है ।

'मुख में राम बगल में छूरी' जैसा जिसका जीवन है अथवा **'कथनी और करणी में बडा अंतर है ।'**

बाहर का दिखावा अलग है और मन में कुछ और है । ऐसे व्यक्ति का कभी कल्याण नहीं हो सकता ।

अपना जीवन पारदर्शी होना चाहिए ।

(10) गंभीरता :– सागर के भीतर अमूल्य रत्न रहे हुए हैं परंतु वह कभी उनका प्रदर्शन नहीं करता । सागर में गंभीरता रही हुई है ।

इसलिए प्रभु का एक विशेषण है–**'सागरवर गंभीरा'** प्रभु सागर की तरह गंभीर होते है ।

गंभीर व्यक्ति ही दूसरों की भूलों को पचा सकता है ।

(5) गुणानुराग :– गुणवान बनना आसान है, परंतु जीवन में गुणानुराग गुण को आत्मसात् करना कठिन है । मोह की पराधीनता के कारण अनादि काल से आत्मा में दोष दृष्टि रही हुई है, इस दोष दृष्टि के कारण उसे अन्य में दोष ही दिखाई देते है ।

आंख में पीलिया रोग होगा तो उसे सर्वत्र पीला-पीला ही दिखाई देगा । बस, इसी प्रकार जीवन में दोष दृष्टि होगी तो सर्वत्र दोष ही दिखाई देंगे ।

सामान्यतया दोष आस पास या साथ में रहनेवाले के ही दिखाई देते हैं, अतः दोष दृष्टि से बचने के लिए अपने जीवन में गुणानुराग गुण को विकसित करना चाहिए । हम यदि दूसरों में गुण देखेंगे तो वे गुण अपने जीवन में आए बिना नहीं रहेंगे और दूसरों में दोष ही देखेंगे तो वे दोष आज नहीं तो कल अपने जीवन में आए बिना नहीं रहेंगे ।

(11) सहन शीलता :– जैन शासन की भागवती दीक्षा का अर्थ ही हैं–`कष्टों का सहर्ष स्वीकार !'

राजा-महाराजा-चक्रवर्ती और तीर्थंकर के पास गृहस्थ जीवन में उच्च कोटि के सुख थे, परंतु दीक्षा लेते समय उन सुखों का सहर्ष त्याग करते थे, और संयम जीवन के कष्टों का सहर्ष स्वीकार करते थे ।

'कष्टार्थं दीक्षा' अर्थात् दीक्षा तो कष्टों को स्वीकार करने के लिए ही है ।

जो कष्टों से घबराता है, वह दीक्षा धर्म का अच्छी तरह से पालन नहीं कर पाता है ।

दुःखों का सहर्ष स्वीकार और सुखों का सहर्ष इन्कार, इसी का नाम दीक्षा है ।

'दशवैकालिक' में भी कहा है–**'देह दुक्खं महाफलं'** देह के दुःख महाफलदायी है ।

(12) आज्ञा पालन :– संयम जीवन में गुरु के पास या गुरु के साथ ही नहीं रहना है, बल्कि गुरु के हृदय में बसना है ।

गुरु के हृदय में वही बस सकता है जो गुरु की हर आज्ञा का आदर-बहुमान से स्वीकार करता है ।

गुरु के साथ रहे परंतु गुरु की आज्ञा का पालन न करे, वह गुरु से कोसों दूर है और गुरु आज्ञा के अनुसार गुरु से कोसों दूर भी जाना पडे तो भी वह गुरु के पास ही है ।

सच मायने में तो आज्ञा ही धर्म है ।

गवर्नर के हस्ताक्षर बिना नोट की जैसे कोई कीमत नहीं है, उसी प्रकार गुरु के हस्ताक्षर बिना आराधना की कीमत नहीं है ।

गुरु की आज्ञा का पालन नहीं करनेवाला यदि छट्ठ-अट्ठम मास क्षमण आदि तपश्चर्याए भी करे तो भी उसके संसार की वृद्धि ही होती है । इसीलिए संयम जीवन की सभी आराधनाएं गुरु साक्षी में करने का विधान है ।

श्वास जैसी सूक्ष्म क्रियाओं के लिए भी **'शिष्य'** बहुवेल संदिसाहुं **'बहुवेल करशुं'** जैसे आदेश मांगकर गुरु आदेश को शिरोधार्य करता है ।

अपनी इच्छाओं को गौण कर गुरु की इच्छाओं को प्रधानता देनेवाला ही आत्म कल्याण के मार्ग में प्रगति कर सकता है ।

(13) प्रज्ञापनीयता :– गुरु जो कहे उसे समझने की तैयारी ।

जिसके अन्तर्मन में अपने अभिप्राय का हठाग्रह होता है, वह सामनेवाले की बात को कभी स्वीकार नहीं करेगा ।

इन्द्रभूति में अभिमान था, परंतु प्रज्ञापनीयता का गुण था अतः महावीर प्रभु ने उसे समझाया तो समझने के लिए तैयार हो गए । जैसे ही अपनी शंका का समाधान हुआ, वह अपने मत को छोडने के लिए तैयार हो गए ।

प्रज्ञापनीयता गुण के कारण वे साधना के शिखर पर पहुँच गए ।

महावीर प्रभु के शिष्यों ने जमाली को भी प्रभु की बात समझाई, परंतु वह अपने पूर्वपक्ष को छोडने के लिए तैयार नहीं हुआ ।

साक्षात् भगवान मिलने पर भी उसने पंद्रह भव का अपना संसार बढा दिया ।

(14) स्वाध्याय रस :– ज्ञान को अमृत भोजन कहा गया है । श्रमण जीवन में स्वाध्याय का खूब रस होना चाहिए । ज्ञान पिपासा जितनी तीव्र होती हैं, उतना ही जीवन में ज्यादा विकास होता है ।

विकथाएं अर्थात् निरर्थक बातें ! उसमें जीवन का अमूल्य समय नष्ट हो जाता है ।

श्रमण जीवन में अपने समय का सबसे अधिक उपयोग स्वाध्याय में ही करने का है ।

साधु जीवन में प्रतिदिन पांच प्रहर स्वाध्याय का विधान है–इसका अर्थ है साधु अपना अधिकांश समय स्वाध्याय में ही व्यतीत करता है ।

(15) क्षमा :– साधु का मुख्य गुण है क्षमा । सामनेवाले के अपराध को माफ कर देना, भूल जाना यह सबसे बडा गुण है ।

अपनी भूल हो जाय तो तुरंत ही क्षमा-याचना करनी चाहिए ।

जो अपनी भूलों के लिए क्षमा मांगता है और सामनेवाले की भूलों को माफ करता है, वह महान् है ।

(16) गुरु समर्पण भाव :–

स्कूल में Pass होने के लिए 35% Marks चाहिए, परंतु संयम जीवन की साधना में सफल होने के लिए ?

प्रभु के वचनों पर श्रद्धा और सद्गुरु के प्रति समर्पण भाव में तो 100% Marks चाहिए ।

प्रभु के एक वचन में भी अश्रद्धा हो जाय तो आत्मा सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हो जाती है ।

गुरु तो परमोपास्य तत्त्व है । उनके अन्तर्मन में शिष्य का एकांत हित ही रहा हुआ है । उनकी की गई आशातना भयंकर परिणाम लाती है ।

गुरु की आज्ञा का अनुसरण करने के बजाय जो गुरु को अपने अनुकूल बनाने की इच्छा करता है–उसका शिष्यत्व निष्फल ही है ।

गुरु की की गई भक्ति–आराधना परम तारक है तो उनकी की गई आशातना महामारक है ।

गुरु के प्रति पूर्ण (Total) समर्पण होना चाहिए ।

गुरु के प्रति रहा थोडा भी असद्भाव आत्मा के विकास को अवरुद्ध बना देता है ।

8. पर दोष दर्शन से क्या फायदा ?

हे पुण्यात्मन् !

दूसरों के दोष देखने से तुझे क्या फायदा ?

महान् पुण्योदय से तुझे सर्वगुण संपन्न और सर्व दोषों से मुक्त ऐसे वीतराग परमात्मा का शासन मिला है ।

इस शासन को प्राप्त कर अनेक पुण्यात्माओं ने अद्भूत गुणों की साधना की है ।

ऐसे गुणवान साधुओं के बीच रहने का तुझे परम सौभाग्य प्राप्त हुआ है ।

ऐसे गुणवानों के बीच रहकर भी तू अपनी काक वृत्ति को नहीं छोड रहा है ।

जब तक छद्मस्थ अवस्था है, तब तक दोष तो रहने ही वाले हैं ।

लोक में कहावत है-**'मानव मात्र भूल का पात्र है !'** जैन दर्शन कहता है **'छद्मस्थ मात्र भूल का पात्र है ।'**

50000 केवली शिष्यों के गुरु गौतम स्वामी के जीवन में भी एक बार भूल हो गई ।

- **सम्राट विक्रम को प्रतिबोध करनेवाले सिद्धसेन दिवाकरसूरिजी म. भी राजा के मान सम्मान में आकर पालखी में बैठकर राज दरबार में जाने की भूल कर बैठे ।**
- सूरि पुरंदर हरिभद्रसूरिजी म., कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्यजी के जीवन में भी भूल हो गई ।

तो अन्य छद्मस्थ मुनि को तो क्या बात करना ?

किसी के जीवन में रही भूलों को देखकर उसकी निंदा करना, इससे तुझे क्या फायदा होगा ? प्रशमरतिकार तो कहते है कि दूसरों की

निंदा करने से नीच गोत्र कर्म का बंध होता है, जिसके फलस्वरुप जीवात्मा को अनेक भवों तक हल्के भवों में जन्म लेना पडता है ।

निंदा करना व निंदा सुनना दोनों बुरा है । अपने कान कोई Dustbin नहीं है कि इसके अंदर पूरे गांव का कचरा डाला जाय ।

हे प्रभु !

मेरी आंखें दूसरों के दोष देखे, इसके बजाय तो तू मुझे अंध बना देना ।

आंखों का अंधापन इतना बुरा नहीं है, उससे भी बुरा दूसरों के दोष देखना है ।

हे प्रभु !

इन कानों से मैं दूसरों की निंदा सुनूं, इसके बजाय तो तू मुझे बहरा बना देना ।

कानों के बेहरेपन से जो नुकसान नहीं है, उससे भी अधिक नुकसान निंदा श्रवण से है ।

हे प्रभु !

मैं दूसरों के दोष गाऊं, इसके बजाय तो तू मुझे मूक बना देना ।

जीभ के मुकपने में जो नुकसान नहीं है, उससे भी ज्यादा नुकसान जीभ से निंदा करने में है । परदोष दर्शन ऐसा लोह चुंबक है, जो दूसरों में रहे दोषों को अपने जीवन में खींचकर ले आता है ।

अतः अपने जीवन बाग को सुगंधी पुष्पों से हरा भरा रखना हो तो निंदा की गंदी गट्टर से दूर रहना होगा । जीवन में गुणानुराग-गुणानुमोदन को आत्मसात् करने जैसा है और दोषदृष्टि परनिंदा व दोषारोपण के दोषों से मुक्त बनने जैसा है ।

9. दीक्षा दिन की स्मृति को ताजा करे ?

मोह के उदय से कभी संयम जीवन में मन में हल्के विचार आ जाय ! संयम भारभूत लग जाय ! संयम की क्रियाओं में उत्साह-उल्लास का रस घट जाय !

अपनी मनः स्थिति इस प्रकार कमजोर हो जाय तो उसी समय अपने मन की आंख के आगे अपने दीक्षा दिन की स्मृति को ताजा कर देना ।

याद करना !

जिस दिन तुम्हारा इस भयंकर संसार से निष्क्रमण का दिन, उस दिन तुम्हारे मन में कितना उत्साह-उल्लास और मनोबल था !

एक सिंह की अदा से तुम इस संसार की कैद में से बाहर निकले थे और आज तुम्हारा उत्साह इतना मंद कैसे हो गया ?

तुम्हारी दीक्षा के दिन स्वजन-कुटुंबीजन-माता-पिता आदि की आंखों में अश्रुधारा बह रही थी, परंतु तुम्हारे मुख पर तो संयम साम्राज्य की प्राप्ति का अपूर्व आनंद-उल्लास था ।

परंतु आज यह क्या ?

जिस रजोहरण को पाने के लिए तुम्हारे मन में इतनी तीव्र प्यास थी ।

रजोहरण को प्राप्तकर उसके प्रति पूर्ण वफादार रहने के लिए कितने कितने अरमान थे ।

आज वे सारे अरमान चूर चूर हो गए हैं क्या उसका तुम्हारे अन्तर्मन में लेशमात्र भी दुःख नहीं है ?

वर्षों के अरमान और पारिवारिक संघर्ष के बाद जिस अमूल्य मंगल

घडी में तुम्हारे हाथ में यह रजोहरण आया उस समय तुम्हारी अंतरात्मा में भावों का ज्वार उछल रहा था ।

कितना उत्साह-उल्लास और उत्सुकता थी उस रजोहरण को पाने के लिए ।

सद्गुरु के वरद हस्तों से जैसे ही यह रजोहरण तुम्हारे हाथ में आया था-उस समय तुम कितने नाच उठे थे !

तुम्हारे इस आनंद नृत्य को देखकर कइयों की मोह की ग्रंथियां टूट गई थी ।

कई आत्माओं में विरतिधर्म को पाने का बीजारोपण हो गया था ।

इस रजोहरण ने तुम्हारे व्यक्तित्व को कितना ऊंचा उठा दिया था ।

जिन माता-पिता, दादा-दादी के चरणों में तुम नत मस्तक होते थे, यह रजोहरण हाथ में आने के बाद सर्व विरति सामायिक की प्रतिज्ञा उच्चरणे के बाद वे ही तुम्हारे चरणों में आदर बहुमान सहित नत मस्तक होने लग गए थें ।

हे प्रभु !

मेरा जीवन तो दोषों की खान है, उसमें गुण रुपी रत्न कब पैदा होंगे !

मेरे जीवन में वह स्वर्णिम दिन कब आएगा, जब–

गौतम स्वामी जैसा विनय मेरे जीवन में आएगा ।

स्थूलभद्र जैसी चित्त की निर्मलता कब पैदा होगी ?

धन्ना अणगार की भांति देह की निर्ममता कब पैदा होगी ?

नंदिषेण मुनि की तरह मेरे जीवन में ग्लान सेवा की भावना कब पैदा होगी ?

मुनिवर ! जिस उत्साह से निकले हो, उसी उत्साह से संयम का पालन करना ।

जाए सद्धाए निक्खंतो, तामेवाणुपालेज्जा ।

संयम जीवन में सबसे अधिक उल्लास-उत्साह का दिन कौन सा होता हैं ?

इसका प्रायः एक ही जवाब होगा-संयमी का जन्म दिन ।

गृहस्थ-जीवन का लेखा-जोखा तैयार किया जाय तो जीवन में सबसे अधिक दुःख जन्म के समय होता है-वेदना का पार नहीं-रुदन से ही जन्म का प्रारंभ होता है ।

जबकि संयमी के जन्म अर्थात् दीक्षा के प्रथम दिन उसको सबसे अधिक उत्साह होता है ।

त्रिभुवन के आधिपत्य से भी अधिक आनंद संयमी को संयम की प्राप्ति का होता है अर्थात् एक ओर विशाल साम्राज्य की प्राप्ति होती हो, उससे भी बढकर आनंद संयम की प्राप्ति का होता है ।

संयम की प्राप्ति अर्थात् अठारह पाप स्थानक के कैदखाने से मुक्ति ।

गृहस्थ को इच्छा-अनिच्छा से भी अठारह अथवा अठारह में से किसी न किसी पाप का सेवन करना ही पडता है, जबकि संयम जीवन में एक भी पाप नहीं !

गृहस्थ के दिन की शुरुआत ही पाप प्रवृत्ति से होती है ।

सुबह उठते ही बहिनों को रसोईघर में जाना पडता हैं, जो छह काय का कत्लखाना है । जहां नमक आदि के उपयोग में पृथ्वीकाय की हिंसा हैं । पानी के उपयोग में अप्काय की हिंसा है । चुल्हे को सुलगाने में तेउकाय की हिंसा है । आग जलाने में वायुकाय की हिंसा है । शाक-सब्जी पकाने में वनस्पतिकाय की हिंसा है ।

चलने-फिरने आदि में त्रसकाय की हिंसा है ।

–पुरुष को भी व्यवसाय, धंधे, कारखाने, नौकरी आदि में बस, ट्रेन आदि में जाना-आना पडता है अन्य-अन्य प्रवृत्तियों में अनेकानेक जीवों की हिंसा रही हुई है ।

हिंसा बिना गृहस्थ का जीवन नहीं ।

जबकि संयम जीवन में किसी भी जीव की हिंसा करने की आवश्यकता नहीं !

गृहस्थ को व्यापार आदि में बात बात में झूठ बोलना पडता है-संयम जीवन में झूठ को अवकाश ही नहीं ।

तुम कितने पुण्यशाली हो-संपूर्ण जीवन में एक भी पाप को स्थान नहीं ।

पाप की सजा कितनी भारी है । किसी भी पाप की न्युनतम सजा 10 गुणा, 100 गुणा, 1000 गुणा व लाख गुणा भी होती है ।

संयमी जीवन की साधना का मुख्य आधार उत्साह और उल्लास है ।

संयम जीवन है तो संयम की क्रियाएं तो होने ही वाली हैं-परंतु वे ही क्रियाएं उत्साह और उल्लास के साथ की जाय तो कर्मों की अपूर्व निर्जरा हो सकती है और वे ही क्रियाएं अनादर, अनुत्साह या निरस भाव से की जाय तो कर्म-निर्जरा के बजाय नवीन कर्मों का बंध ही होता है ।

10. गुरु के गुण

भव-निस्तारक गुरु में तीन गुण जरुरी है–

1) कठोरता 2) वात्सल्य और 3) उदारता ।

कठोरता स्व-पर उभय के प्रति जरुरी है । गुरु शिष्य को अनुशासन में रखने के लिए कभी जरूरत पडे तो कठोर भी बने । स्वयं भी उस अनुशासन का दृढता से पालन करे ।

गुरु कुंभार की तरह हो । कुंभार घडा बनाते समय बाहर से चपेटा लगाता है और अंदर से उसे पकडे रखता है । गुरु बाहर से कठोर और अंदर से कोमल होने चाहिये ।

गुरु माता-पिता तुल्य हो । माँ की तरह वात्सल्य का झरना बहाए और पिता की तरह कठोर बनकर अनुशासन का पालन भी कराए ।

गुरु सूर्य-चंद्र समान हो । शिष्य की भूल सुधारने के लिए सूर्य की तरह तीक्ष्ण भी बने, कभी आंख लाल भी करे और प्रसंगानुसार चंद्र की तरह शीतल बनकर शिष्य को वात्सल्य का अमीपान भी कराए ।

❄ गुरु शिष्य के भीतर रहे गुणों को प्रकट करने के लिए प्रयत्नशील होने चाहिये । अवगुणों को दूर किए बिना सच्चा हित नहीं हो सकता है ।

जीव अनादि काल से दोषों का सेवन करता आया है, अतः उसमें दोष दिखाई दे, उसमें आश्चर्य नहीं है । अब प्रयास करना है- दोषों के नाश और गुणों के प्रकटीकरण के लिए ।

सुयोग्य शिष्य की सबसे बडी विशेषता, गुरु के प्रति उसका पूर्ण समर्पण भाव है ।

गुरु जो कुछ भी करेंगे-वह मेरे हित के लिए ही करेंगे ऐसा दृढ विश्वास होना चाहिये ।

11. तप से वासनाओं का शोषण

मुनिवर !

साधु के महाव्रत पांच हैं, किंतु उनमें सर्वाधिक महत्त्व चौथे महाव्रत का है । अन्य महाव्रतों में अपवाद है लेकिन चौथे में नहीं !

इस महाव्रत के रक्षण के लिए एक नहीं नौ-नौ बाडों का विधान है ।

आचार्य के 36 गुणों में पांच महाव्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत आ जाता है । फिर भी स्वतंत्र रुप से ब्रह्मचर्य व्रत की 9 बाडों के 9 गुण गिने हैं ।

इतना ही नहीं पांच इन्द्रियों का संवरण-नियंत्रण भी इसी व्रत के लिए है ।

ब्रह्मचर्य के पालन में स्पर्शनेन्द्रिय पर नियंत्रण अनिवार्य है ।

रसनेन्द्रिय के पोषण से भी ब्रह्मचर्य का घात होता है । रसप्रद भोजन से काम-वासना जागृत होती है ।

सुगंधी पदार्थों का सेवन भी ब्रह्मचर्य के लिए घातक है । अश्लील दृश्यों को देखने से भी कामवासना को उत्तेजन मिलता है ।

अश्लील गीतों के श्रवण से भी काम विकार पुष्ट बनते है ।

इससे स्पष्ट है कि ब्रह्मचर्य के पालन के लिए पांच इन्द्रियों पर अंकुश खूब जरुरी है ।

कई अज्ञानी कुतर्क करते हैं कि वासना के शोषण के लिए तप की क्या आवश्यकता है ? आत्म चिंतन व ध्यान के बल से वासनाओं पर नियंत्रण पाया जा सकता है ।

कामवासना को निर्मूल करने के लिए जैन शासन बाह्य-अभ्यंतर उभय तप पर भार दिया गया है ।

प्रभु महावीर का जीवन हमारे सामने है । प्रभु ने ध्यान साधना द्वारा अभ्यंतर तप भी किया तो 12½ वर्ष में 11½ वर्ष से भी अधिक उपवास द्वारा बाह्य तप भी किया ।

उपवास आत्मा का घर है ।

आयंबिल मित्र का घर है, विगई दुश्मन का घर है और व्यसन (शराब-मांसाहार) शैतान का घर है ।

उपवास द्वारा प्रभु अधिकांश समय आत्म-घर में रहे है ।

उपवास से इन्द्रियां नियंत्रण में आती है । उपवास का अर्थ ही है-आत्मा के समीप में रहना अर्थात् शरीर से दूर रहना ।

विगइयों के सेवन से हम इन्द्रियों को पुष्ट करते हैं, जिसके परिणाम स्वरुप मन में कामवासना जागृत होती है ।

जैन दर्शन में हर आराधना के साथ तप जुडा है । ज्ञान पंचमी की आराधना करनी है उपवास करो । नवपद की आराधना करनी हैं–9 आयंबिल करो । प्रभु महावीर की उपासना करनी है-दीपावली का छट्ठ करो ।

देह की ममता आसक्ति को तोडने का काम तप करता है ।

तप से इन्द्रियों का भी शोषण होता है, अतः संयमी आत्मा के लिए शक्ति अनुसार तप खूब जरुरी है ।

एकांत ध्यान की बात करनेवालों के लिए प्रभु वीर का जीवन ही साक्षीभूत है प्रभु ने ध्यान के साथ बाह्य तप भी किया ।

तप यह तो श्रमण जीवन का शणगार है ।

❁ गृहस्थों के लिए दैनिक तप का विधान हैं तो साधु जीवन में भी तप अवश्य होना चाहिए ।

ठीक ही कहा है– **'योगी खाए एक बार**
भोगी खाए दो बार और
रोगी खाए बार बार ।

बार-बार खाना यह भी रोग की निशानी है । प्रभु महावीर ने दश वैकालिक सूत्र में ठीक ही कहा है–**'एगभत्तं च भोयणं'** अर्थात् साधु दिन में एक ही बार भोजन करे ।

❄ पेट्रोल के बिना गाडी चलती नहीं है, उसी प्रकार शरीर को टिकाने के लिए आहार देना जरुरी हो जाता है ।

परंतु उस आहार के साथ रसनेन्द्रिय का पोषण न हो, उसकी सावधानी भी खूब जरुरी है । सावधान न रहे तो यह रसनेन्द्रिय आत्मा का भयंकर अधः पतन करा सकती है ।

कंडरिक मुनि, सिंह केसरिया मुनि आदि का अधः पतन इसी के कारण हुआ था ।

शरीर साथ न देता हो, वृद्धावस्था या रोग आदि के कारण दो-तीन बार आहार लेना पडे तो भी कम से कम रसनेन्द्रिय का पोषण न हो उसकी सावधानी तो अवश्य रखनी चाहिए ।

शारीरिक शक्ति होते हुए भी तप धर्म की उपेक्षा करने से देह-राग का पोषण होता है, संयम जीवन में देह राग को तोडना है, क्योंकि वही सबसे बडा रोग है । अपना रोग पुष्ट बने, ऐसी प्रवृत्ति तो कभी नहीं करनी चाहिए, यह तो अपने ही हाथों से अपने पांवों पर कुल्हाडी मारने जैसा होगा ।

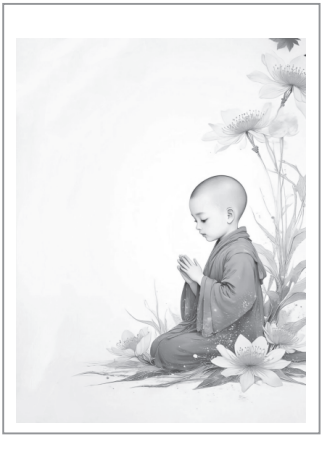

12. गुरुकृपा हि केवलं, शिष्यस्य परं मंगलम्

दुनियाँ में मंगल तो बहुत है, परंतु शिष्य के लिए सबसे बडा मंगल कौनसा ?

इस प्रश्न का जवाब इस आर्षवाणी में है–**'शिष्य के लिए श्रेष्ठ मंगल गुरु कृपा ही है ।'**

एक समर्पित शिष्य के लिए **'गुरु'** ही सर्वस्व है ।

गुरु में ही देव अर्थात् भगवान की बुद्धि करने की है ।

एक पाषाण की प्रतिमा में भगवद् भाव का आरोपण करने से वह प्रतिमा मिटकर भगवान बन जाती है, फिर उसकी भक्ति साक्षात् प्रभु की भक्ति है और उसकी आशातना साक्षात् प्रभु की आशातना है ।

सिर्फ पुस्तक की आशातना ज्ञान की आशातना है परंतु उसमें गुरु की स्थापना करने के बाद उसकी आशातना करे तो वह गुरु की भी आशातना कहलाएगी ।

इस कलिकाल में हमें साक्षात् भगवान का योग तो नहीं मिला है, परंतु गुरु में ही भगवान का आरोपण करके हम साक्षात् भगवान की भक्ति का लाभ प्राप्त कर सकते है ।

अपनी मानसिक कल्पना ही फल की प्राप्ति में मुख्य भाग भजती है ।

अर्जुन को साक्षात् गुरु मिले Ideal Reality के । एकलव्य को परोक्ष Objective Reality के गुरु द्रोणाचार्य मिले ।

परंतु एकलव्य के दिल में रहे समर्पण भाव ने अर्जुन से भी अधिक सिद्धि हासिल कर ली ।

छद्मस्थ को अपने आत्म-विकास के लिए **'गुरु'** अनिवार्य है ।

गुरु की कृपा-आशीर्वाद पाने के लिए हृदय में पूर्ण समर्पण भाव होना चाहिये ।

गुरु की हर आज्ञा को प्राण से भी बढकर समझना चाहिये ।

गुरु की कृपा से जो मिलता है, वह अन्य किसी उपाय से संभव नहीं है ।

गुरु की कृपा पाने के लिए अपने मन, वचन और काया के तीनों योगों का गुरु के प्रति समर्पण होना चाहिये ।

तीर्थंकर परमात्मा अंतिम भव में स्वयं संबुद्ध होते हैं-परंतु उसके पूर्व के भवों में तो उन्होंने भी गुरु तत्व की आराधना साधना की है ।

अधिकांश आत्माएं गुरुगम से ही सम्यग्दर्शन प्राप्त करती है ।

भगवान महावीर, पार्श्वनाथ, ऋषभदेव आदि का चरित्र पढोगे तो उनकी आत्माओं को भी प्रथम भव में गुरु के उपदेश से ही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई है ।

तीर्थंकरों के भी आत्म-विकास का प्रारंभ **'गुरु'** तत्व से ही हुआ है ।

पंच सूत्र में कहा हैं-**'गुरु की आराधना से परम गुरु परमात्मा का संयोग प्राप्त होता है ।'**

शिष्य के लिए गुरु की कृपा से बढकर कोई मंगल नहीं है ।

❖ स्थूलभद्र महामुनि चार मास तक कोशा वेश्या के वास भवन में रहे । प्रतिदिन षड्रस भोजन करते थे । वर्षा ऋतु ! एकांत और यौवन वय ! उनके मन को लुभाने के लिए कोशा वेश्या द्वारा भरसक प्रयास !

काम वासना के पोषक प्रबल निमित्त होने पर भी उनके रोम में भी काम वासना जागृत नहीं हुई । इतना ही नहीं, वे वेश्या को भी व्रतधारी श्राविका बना सके ।

जब कि चार-चार मास के उपवास करनेवाले महातपस्वी सिंह गुफावासी मुनि !

कोशा वेश्या के वास-गृह में प्रवेश करते ही कामातुर हो गए ।

इसका एक मात्र कारण स्थूलभद्र महामुनि के पास गुरुकृपा का बल था-जबकि सिंहगुफावासी मुनि के पास अन्य सब कुछ था, परंतु उनके पास गुरुकृपा का बल नहीं था ।

जिसके पास गुरुकृपा है, उसके लिए कोई भी सिद्धि असंभव नहीं है तथा जिसके पास गुरुकृपा नहीं है, उसकी सारी साधनाएं भी निष्फल है ।

❁ गुरु की अकृपा प्राप्त करनेवाले कुलवालक मुनि ने कठोरतम तपश्चर्याएं की, परंतु वे सब निष्फल गई ।

❁ **गुरुकृपा प्राप्ति का अमोघ उपाय है-अपनी इच्छाओं को गौण करना और गुरु की इच्छा, भावना को प्रधान करना ।**

❁ अपनी इच्छाओं को गौण करना, सबसे कठिन साधना है, परंतु इस साधना के अभाव में गुरु की कृपा हासिल करना शक्य नहीं है ।

13. श्रमण वेश का मूल्यांकन

श्रमण वेष के चोल पट्टा, पांगरणी आदि कपडों का बाजार की दृष्टि से मूल्य कितना ? और दीक्षा के प्रथम दिन उसी वेष को तुम्हें प्रदान करने के लिए उस वेष का मूल्यांकन कितना ?

100-200 रु. की कीमत के कपडे का लाखों रुपये का चढावा ! याद करना ।

इस श्रमण वेष का स्वीकार कर आज तक अनंत आत्माओं ने निरतिचार चारित्र धर्म का पालन किया है । प्रसन्नचंद्र राजर्षि को पतन के गर्त से ऊपर उठानेवाला यही श्रमण वेष था ।

सैनिक का वेष सैनिक को युद्ध के लिए प्रेरित करता है, उसके मन में शौर्य को जगाता है । पुलिस का वेष पुलिस को अपने कर्तव्य की याद दिलाता है ।

14. प्रतिकूलता तो संयम जीवन का प्राण है ।

महासती कुंती प्रभु से प्रार्थना करती है–

'विपदः सन्तु मे सदा'

हे प्रभु ! मेरे जीवन में आपत्ति सदैव बनी रहे !

कुंती की यह मान्यता थी कि दुःख आने पर प्रभु के समीप जाने का मन होता है, जबकि सुख तो प्रभु से दूर ही रखता है ।

❁ **पाप कर्मों की मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन दुःखों को हंसते मुंह सहन करना है, अतः दुःख तो उपकारी है ।**

❁ चरम तीर्थपति महावीर प्रभु अपने कर्मों के क्षय के लिए आर्य देश को छोड अनार्यदेश में गए थे । सामने जाकर उन्होंने प्रतिकूलताओं का सहर्ष स्वीकार किया था ।

शारीरिक कष्टों को प्रसन्नता पूर्वक सहन करना यह तो **'काय कष्ट'** नाम का बाह्य तप है । उन कष्टों में लेश भी दुर्ध्यान नहीं करना, यह भी **'ध्यान'** नाम का अभ्यंतर तप है । प्रभु ने जैन साधु की आचार-संहिता ही इस प्रकार बताई हैं, जिसमें कष्टों का सहर्ष स्वीकार है ।

❁ एक ही घर से भिक्षा न लेकर, अनेक घरों में जाकर थोडी थोडी भिक्षा स्वीकार करना, यह बाह्य कष्ट ही तो है ।

❁ **'किसी भी प्रकार के वाहन का उपयोग न कर जिंदगी भर पैदल ही चलना'** इसमें प्रतिकूलताओं का स्वीकार ही तो है ।

❁ **'हजाम के पास मस्तक का मूंडन न कराकर केश लोच कराना'** प्रतिकूलताओं का स्वीकार ही तो है ।

❁ **भयंकर ठंडी में भी अग्नि का सेवन न करना, भयंकर गर्मी में भी कूलर पंखे, A.C. आदि का उपयोग नहीं करना, प्रतिकूलताओं का सहर्ष स्वीकार ही तो है ।**

दीक्षा अंगीकार कर जिसका मन ढीला हो जाता है, उसे संयम के कष्ट भारभूत लगते है । वह संयम जीवन में भी चारों ओर अनुकूलताओं की ही शोध करता है । अनुकूलताओं का राग और प्रतिकूलताओं का द्वेष जीवन में कई प्रकार के पाप कराता है । ऐसा व्यक्ति वास्तव में अपने संयम के फल को हार जाता है ।

15. युनिवर्सिटी की डिग्रियाँ अनावश्यक है

गृहस्थ को डिग्री की आवश्यकता रहती है । डिग्री के अनुसार उसको नौकरी आदि मिलती है । समाज में उस डिग्री की कदर होती है ।

परंतु संयम जीवन के स्वीकार के साथ तो उन सब पदों का, डिग्री का त्याग किया है ।

राजा, महाराजा, बलदेव, चक्रवर्ती भी दीक्षा लेते समय सिर्फ साधु पद स्वीकार करते हैं । अन्य सब पदों का त्याग करते है तो फिर संयम जीवन के स्वीकार के बाद उन पदों का मोह क्यों ?

गृहस्थ को तो डिग्री के अनुसार वेतन मिलता है-पदोन्नति होती है ।

साधु जीवन में तो जैन शासन के आचार्य आदि पदों की Value है ।

वे पद भी मांगने के नहीं होते है । पद की योग्यता विकसित करना यह हमारा कर्तव्य हैं, परंतु पद की मांग करना या पद के लिए लडना या ईर्ष्या करना कदापि उचित नहीं है ।

जैन शासन में मुमुक्षु सिर्फ एक ही पद पाने के लिए विनती करता है वह है साधु या साध्वी पद । इसके सिवाय अन्य पद तो योग्यता देख गुरु स्वयं प्रदान करते है, उसकी मांग नहीं की जाती है ।

जैन शासन में सरकारी पदों की कोई कीमत नहीं है, अतः उसका मोह नहीं रखना चाहिए ।

16. देहाध्यास त्याग जरुरी है

मुनिवर !

जिस दिन संयम जीवन का स्वीकार किया, उस दिन तुमने धन का त्याग किया । पुत्र-परिवार का त्याग किया, पत्नी का त्याग किया । माता-पिता का त्याग किया । जमीन-जायदाद का त्याग किया अपने गांव-नगर-राज्य का त्याग किया । अरे ! अपने नाम का भी त्याग कर दिया ।

चक्रव्युह के सात कोठे की तरह ममत्व के छ कोठे भेद दिए परंतु सातवा कोठा भेदना बाकी रह गया ।

वह सातवा कोठा है-अपना शरीर !

गृहस्थ जीवन में कई लोग धर्म-आराधना तो करते है, परंतु अपने धन-कुटुंब शरीर को संभालकर ! अर्थात् जो जो अनुकूल संयोग होते है उन अनुकूल संयोगों को संभालते हुए धर्म करते हैं, जबकि धर्म तो प्रतिकुलताओं के स्वीकार में है ।

साधु जीवन का अर्थ ही है–अनुकूलताओं का त्याग और प्रतिकूलताओं का हंसते मुंह स्वीकार ।

`दश वैकालिक सूत्र में' **देह दुक्खं महाफलं** सूत्र द्वारा देहाध्यास त्याग का सुंदर निर्देश दिया है ।

संयम जीवन में देह से लडना है अर्थात् देह की ममता से लडना है ।

देह का ममत्व हमें मोह के जाल में फंसा न दे, इसके लिए हमें सतत सावधान रहना है । सब कुछ छोडा परंतु देह के ममत्व ने आत्मा को पुनः पतन के गर्त में डूबा दिया ।

देह की ममता ही साधु को आचार-पालन में शिथिल बनाती है ।

'देह को कष्ट नहीं होना चाहिये ।' इस प्रकार देह को संभाल-संभाल कर जो आराधना-साधना करते हैं–उनकी आराधना में दम नहीं होता है ।

संयम जीवन में केश लुंचन, पाद विहार, गोचरी से भिक्षा चर्या आदि में देह को प्रत्यक्ष कष्ट है ।

स्नान त्याग, सुंदर वस्त्र परिधान न करना, आभूषण अलंकार का त्याग करना आदि आदि देह के ममत्व के त्याग के ही उपाय है ।

देह में जीव बुद्धि-मिथ्यात्व है ।
जीव में जीव बुद्धि बोधि है और
जीव में शिव बुद्धि समाधि है ।

जिस भव में जो देह मिला, उस भव में उस देह पर खूब ममत्व कर हमने अपनी आत्मा का संसार खूब बढाया है–देवों को भी दुर्लभ ऐसे मानव जन्म को प्राप्त कर इस जीवन में प्राप्त देह के ममत्व के त्याग के लिए प्रबल पुरुषार्थ करे ।

इन्द्रियों के अनुकूल विषयों का सेवन भी देह का ही पोषण है ।

आत्मा तो शरीर की मालकिन होनी चाहिये-इसके बजाय आत्मा ही देह के गुलाम बन गई है । नौकर सेठ बन गया और सेठ नौकर बन गया, यह हमारी स्थिति है । इसे बदलने के लिए देह में आत्मबुद्धि को छोडकर, देह को आत्म साधना का साधन मानकर साधना कर लेने में ही अपना आत्महित है ।

आत्मा के तीन भेद-बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा ।

❁ जिनको देह में आत्म बुद्धि हो, वे बहिरात्मा है ।

❁ **आत्मा में आत्म-बुद्धि हो, वे अंतरात्मा है ।**

❁ आत्मा के विशुद्ध स्वरुप को प्राप्त आत्मा ही परमात्मा है ।

अनादिकाल से आत्मा अपने आत्म स्वरुप से ही अज्ञात है । देह में आत्म-बुद्धि के कारण आत्मा इस संसार में भटक रही है ।

❁ आत्मा की सर्वश्रेष्ठ स्थिति परमात्म दशा को प्राप्त करने का साधन अंतरात्म दशा है ।

❁ **अंतरात्म-दशा में रही आत्मा के लिए देह गौण और आत्मा मुख्य है ।**

❁ उस आत्मा को दैहिक, भौतिक व इन्द्रिय-सुखों में रस नहीं होता है ।

❄ श्रमण-जीवन की समग्र साधना बहिरात्म दशा से मुक्त होने के लिए है ।

दशवैकालिक सूत्र में आत्म-जागृति के लिए बहुत ही सुंदर सूत्र हैं–**'देह दुक्खं महाफलं ।'** देह को दुःख देना-महाफलदायी है । अनादिकाल से आत्मा में अपने देह के प्रति गाढ ममत्व भाव रहा हुआ है ।

धन, पुत्र, परिवार आदि के ममत्व को छोडना तो भी सरल है परंतु देह के ममत्व को छोडना सबसे कठिन है ।

❄ देह के ममत्व को तोडने के लिए ही साधु जीवन में पादविहार, केशलोच, भिक्षा में माधुकरी वृत्ति, कायोत्सर्ग, प्रतिक्रमण तथा ध्यान आदि क्रियाएं बतलाई है ।

❄ **देव दुर्लभ श्रमण जीवन प्राप्तकर भी देह के ममत्व भाव का ही पोषण होता हो तो यह तो हॉस्पीटल में जाकर भी रोग को बढाने जैसा होगा ।**

सतत याद रखें–`मेरा श्रमण जीवन अनादि के देहाध्यास को तोडने के लिए है अतः श्रमण जीवन में देह की ममता का पोषण हो, वैसी प्रवृत्तियाँ तो कदापि नहीं होनी चाहिए ।

17. स्वाध्याय

शास्त्रों का स्वाध्याय जीवन में विद्वत्ता हासिल करने के लिए या प्रवचन की प्रभावकता पैदा करने के लिए या किसी को वाद में हराने के लिए नहीं हैं–बल्कि स्वाध्याय का वास्तविक फल जीवन में अपनी परिणति (मन के परिणाम, अध्यवसाय) को सुधारने के लिए है ।

ज्ञान की प्राप्ति से अपनी परिणति सुधरती है तो वह ज्ञान सफल व सार्थक है ।

लिखे हुए अक्षरों को मिटाने में ज्ञान की आशातना है तो याद किए हुए श्रुत को भूल जाना यह भी ज्ञान की आशातना है ।

श्रुत की स्मृति को तरोताजी बनाए रखने के लिए उस कंठस्थ श्रुत का पुनरावर्तन खूब जरुरी है ।

❁ स्वाध्याय तो अभ्यंतर तप है । ठीक ही कहा है–**'सज्झाय समो तवो नत्थि'** स्वाध्याय के समान कोई तप नहीं है ।

❁ **स्वाध्याय यह संयम जीवन का प्रधान योग है, इसी कारण संयम जीवन में 24 घंटे में पांच प्रहर-15 घंटे स्वाध्याय की आज्ञा है ।**

❁ स्वाध्याय से मन के अध्यवसाय निर्मल बनते है ।

❁ **अध्यात्म और वैराग्य पोषक ग्रंथों के स्वाध्याय से जीवन में वैराग्य रस पुष्ट बनता जाता है ।**

❁ स्वाध्याय से जीवों के प्रति मैत्री आदि भावों की पुष्टि होती है ।

❁ क्रिया योग की सफलता स्वाध्याय को ही आभारी है । स्वाध्याय से क्रिया में भाव जुडता है अर्थात् वे क्रियाएं भाव युक्त बनती है ।

❁ **'ज्ञानस्य फलं विरतिः'** स्वाध्याय के फलस्वरुप जीवन में विरति धर्म की प्राप्ति होती है ।

❁ **क्रियावान् को देश आराधक कहा है, जब कि ज्ञानी को सर्व आराधक कहा है ।**

❁ स्वाध्याय से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है ।

18. संयम में बाधक तीन ग्रह

गृहस्थों को कई ग्रहों की समस्याएं होती है । किसी को मंगल बाधक होता है तो किसी को शनि ! किसी को राहु पीडा देता है तो किसी को शनि की पनोती ।

शनि-मंगल व राहु क्रूर ग्रह कहलाते है । संयम के आत्मिक-आनंद को लूटनेवाले भी तीन ग्रह हैं ।

इन तीन ग्रहों से संयमी को बचना चाहिए ।

1. संग्रह :– जीवन निर्वाह के लिए संयमी को उपकरण रखने की ज्ञानियों ने छूट दी है । क्षुधातृप्ति के लिए गोचरी की विधि बताई है । परंतु अनावश्यक **संग्रह** का निषेध किया है ।

'कुक्खि संबलस्स' कहकर क्षुधा से अतिरिक्त आहार का भी निषेध कर दिया है ।

अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह संयम घातक है ।

2. कदाग्रह :– संयम जीवन में अपनी बात का झूठा आग्रह नहीं होना चाहिए ।

3. विग्रह :– नगण्य बातों में किसी के साथ झगडा करने की मनोवृत्ति नहीं होनी चाहिए ।

संग्रह कदाग्रह और विग्रह का त्याग करनेवाला ही वास्तविक संयम धर्म का पालन कर सकता है । श्रमण जीवन का स्वीकार करने के बाद भी जो संग्रह, कदाग्रह और विग्रह के जाल में फंस जाता है, वह संयम के फल को हार जाता है और दुर्गति के गर्त में डूब जाता है । अतः हम संयमी को इन तीन ग्रहों से बचने की कोशिश करनी चाहिये ।

19. आंख कीमती या कान ?

दुनिया कहती है–**'आंख है तो सब कुछ हैं ।'** आंख नहीं तो सब जगह अंधेरा ही अंधेरा है । आंख के बिना जीवन शुन्य है ।

अध्यात्म जगत् में आंख से भी ज्यादा कीमती है **कान,** क्योंकि कान से ही हम प्रभु की वाणी, गुरु की वाणी का श्रवण कर सकते है ।

आज्ञा पालन बाद में होता हैं, उसके पूर्व आज्ञा-श्रवण जरुरी है ।

गुरु आज्ञा भी कैसे करेंगें ? जो सुन सकता हो ! जो सुनता ही नहीं है, उसके लिए आज्ञा पालन बहुत कठिन है ।

❁ अंतिम समय में, मृत्यु के समय समाधि के लिए भी आंख से भी ज्यादा कीमत कान की है ।

❁ **सांप ने नवकार सुना और धरणेन्द्र बन गया ।**

❁ पंचेन्द्रिय वही कहलाता है, जिसके पास कान है ।

❁ सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का भी मुख्य साधन उपदेश-श्रवण ही है ।

❁ श्रुतज्ञान का भी मुख्य साधन कान है ।

नियमित रुप से जिनवाणी का श्रवण करते करते ही व्यक्ति महाज्ञानी बन सकता है ।

संसार के मार्ग में आंख कीमती है ।

संयम के मार्ग में कान कीमती है ।

पंचेन्द्रिय अवस्था के बिना सम्यग्दर्शन की प्राप्ति संभव नहीं है ।

❁ **कान की प्राप्ति पंचेन्द्रिय अवस्था में ही संभव है ।**

❁ कान का सर्वश्रेष्ठ सदुपयोग है-जिनवाणी अर्थात् आत्महितकारी वचनों के श्रवण में रुचि ।

❁ कान का सबसे भयंकर दुरुपयोग हैं–परनिंदा श्रवण में रुचि !

❁ **छोटी सी अंगुली (कनिष्ठा) के द्वारा भी कान के मैल को दूर किया जा सकता हैं, परंतु यदि वह मैल दूर हो जाने के बाद भी**

यदि निंदा श्रवण का रस दूर नहीं हुआ तो ये ही कान साधक, त्यागी, तपस्वी आत्मा को भी भयंकर दुर्गति में धकेल देते है ।

बाह्य जीवन में अन्य कोई पाप प्रवृत्तियाँ न हो तो व्यक्ति अपने आपको धर्मात्मा मान लेता है परंतु एक परनिंदा श्रवण का रस भी व्यक्ति का अधःपतन करा देता है ।

साधना मार्ग में आगे बढने के लिए परनिंदा श्रवण से बचने का अवश्य प्रयास करे ।

20. पुण्य से अधिक बलवान् पुरुषार्थ

पुण्य के उदय से व्यक्ति को जीवन में अनुकूल सामग्री की प्राप्ति होती है, परंतु उस पुण्योदय को सफल व सार्थक बनाने का काम तो पुरुषार्थ ही करता है ।

❁ **मानव जीवन, पांच इन्द्रियों की पूर्णता, जैन धर्म की प्राप्ति आदि सारी सामग्री पुण्योदय के अधीन है, परंतु सामग्री मिलने के बाद भी पुरुषार्थ न करे तो वह सामग्री आत्मा के लिए भव निस्तारक नहीं बन सकती है ।**

खाने की सामग्री मिलती है पुण्योदय से । सामग्री मिलने मात्र से पेट नहीं भरता है, पेट भरने के लिए तो पुरुषार्थ भी जरुरी है ।

❁ **देव-गुरु धर्म की सामग्री, पवित्र संयम जीवन, सद्गुरु का योग इन सब की प्राप्ति में पुण्योदय का प्रबल पीठबल है । बस, अब उसे सफल बनाने के लिए पुरुषार्थ की साधना खूब जरुरी है ।**

संसार में सफलता पुण्य के अधीन है, जबकि संयम जीवन में सफलता पुरुषार्थ के अधीन है, अतः प्रमाद छोडकर संयम की साधना में प्रबल पुरुषार्थ करना चाहिये ।

21. आंख का दुरुपयोग-पतन का मार्ग

मंथरा और कैकेयी का मिलन हुआ तो रामायण का सर्जन हुआ ।

दुर्योधन और शकुनि का मिलन हुआ तो महाभारत का सर्जन हुआ ।

उसी प्रकार आंख और मन का दुरुपयोग हो गया तो आत्मा का पतन हुए बिना नहीं रहता है ।

सिंहगुफावासी मुनि का पतन आंख को ही आभारी था ।

कोशा वेश्या के वास भवन में काम के विचित्र दृश्यों को देखा ।

कोशा वेश्या के अद्‌भुत रुप और लावण्य को देखा और तपस्वी मुनि के रोम रोम में विकार वासना की आग भडक उठी ।

संयम जीवन की मर्यादा को भी उन्होंने तोड दिया ।

22. उत्साह संयम का प्राण

जीवन में कठोरतम साधना हो, परंतु मन में उत्साह न हो तो वह साधना आत्मा के लिए लाभदायी नहीं बन पाती है । टेक्सी के सभी Parts सही हो परंतु Tyre में पंक्चर हो तो वह गाडी तेजी से भाग नहीं सकती हैं, इसी प्रकार साधना मार्ग में, हृदय में उत्साह न हो तो वह साधना दमदार नहीं बन पाती है ।

❄ बगीचे में रहे पौधों का पोषण जल के सिंचन को ही आभारी है ।

माली पौधों का सिंचन बंद कर देता है और वे पौधे मुर्झाने लगते है ।

बस, साधना मार्ग में भी दिल में उत्साह उल्लास खूब जरुरी है ।

उत्साह-उल्लास पूर्वक की गई थोडी भी साधना महाफलदायी बन जाती है, जबकि निराश होकर की गई बडी भी साधना नगण्य बन जाती है ।

23. समस्त जीव-मैत्री

सागर में अमाप जल राशि है, परंतु जगत् में जितना भी पानी है वह सब सागर में नहीं है ।

प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ भावना के पात्र जीव मर्यादित है, परंतु मैत्री भावना के पात्र तो जीव मात्र है ।

मैत्री भावना में एक भी जीव को Minus नहीं कर सकते है ।

जगत् के सब जीवों से मैत्री परंतु सिर्फ एक ही जीव से शत्रुता ! बस, इस मनोभाव ने भी आत्मा के विकास को अवरुद्ध ही किया, इसके साथ आत्मा को पतन के गर्त में डूबा दिया ।

अग्निशर्मा का वैर सबके साथ नहीं था, सिर्फ गुणसेन के प्रति उसके अन्तर्मन में नफरत थी फिर भी उस नफरत ने उसे अनंत संसारी बना दिया था ।

जिस प्रकार आकाशास्तिकाय जीव-अजीव सभी द्रव्यों को अवकाश प्रदान करता है, उसमें किसी की बादबाकी Minus नहीं करता है, उसी प्रकार मैत्री भावना से अपनी आत्मा को भावित करते समय जगत् के जीव मात्र का उसमें समावेश करना है, किसी एक जीव की भी उपेक्षा नहीं करनी हैं चाहे वह अपना दुश्मन हो, चाहे वह महापापी हो ।

मैत्री आदि भावनाओं से अपने चित्त को भावित करना चाहिए । इन भावनाओं से भावित बनी आत्मा कषायों की आग से अपने आपको बचा सकती है ।

24. मंजिल दूर नहीं है

चौदह राजलोक रुप इस विश्व की अधिकांश जीव सृष्टि तो अव्यवहार राशि की सूक्ष्म निगोद में ही नजर कैद है । उन जीवों के विकास के लिए कोई chance नहीं है । एक मात्र जन्म-मरण । अपने एक श्वासोच्छ्वास में 17½ भव ! दो घडी की सामायिक के 65,536 भव । एक दिन में 19,66,080 भव ! एक मास में 5,83,82,400 भव ! एक वर्ष में 70,77,88,800 भव हो जाते है ।

जन्म-मरण के सिवाय अन्य कोई प्रवृत्ति नहीं है । वेदना का पार नहीं है ।

भवितव्यता के परिपाक से उस निगोद में से बाहर निकलने का अवसर मिला । फिर पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय तथा वनस्पतिकाय में भयंकर यातनाएं सहन की ।

वहां अकाम निर्जरा करते करते बेइन्द्रिय-तेइन्द्रिय-चउरिन्द्रिय की स्थिति को प्राप्त किया वहां भी ठंडी, गर्मी, वर्षा, अग्नि आदि अनेक कष्ट सहन किए ।

वहां से बाहर आकर पंचेन्द्रिय अवस्था प्राप्त की । पंचेन्द्रिय तिर्यंच अवस्था में भयंकर कष्ट सहन किए । पशु-पंखियों की पीडाएं हमारी नजर के सामने है ।

तिर्यंच गति में भूख, प्यास, ठंडी, गर्मी, छेदन-भेदन-कतल हंटर के मार आदि कई कई प्रकार की यातनाएं सहन की ।

नारक जीवों की भयंकर यातनाओं को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता है । मनुष्य भव में भी भूख, प्यास, ठंडी, गर्मी, गरीबी, शारीरिक रोग आदि के कई दुःख सहन किए ।

दुःख से भरे इस संसार में ऐसा कोई दुःख नहीं हैं, जो दुःख अपनी आत्मा ने अनंती बार सहन नहीं किया है ।

उन समस्त दुःखों से सदाकाल के लिए मुक्ति पाने के उपाय रुप **'संयम धर्म'** की प्राप्ति हुई हैं यह हमारा कितना बडा सौभाग्य है ।

क्षेत्र की अपेक्षा 14 राजलोक रुप इस विश्व में हम बिल्कुल Centre में रहे हुए है । इसका अर्थ है कि हमने आधी दूरी पार कर दी है ।

मध्य लोक में भी असंख्य द्वीप और समुद्र हैं, परंतु जीवात्मा का मोक्ष गमन ढाई द्वीप से ही संभव है । हमारा सौभाग्य है कि हम ढाई द्वीप के भीतर पैदा हुए है । ढाई द्वीप में भी मनुष्य की उत्पत्ति के 101 क्षेत्र हैं जिनमें 15 ही कर्मभूमि हैं, जहां सर्वविरति सुलभ है ।

उसी कर्म भूमि में हमारा जन्म हुआ है । भरत क्षेत्र में भी एक अवसर्पिणी काल में 90% काल युगलिक काल हैं । हम बडभागी है कि हमारा जन्म पांचवे आरे में हुआ है, जहां प्रभु का शासन मिला है ।

25. आदेश नहीं, उपदेश

प्रभु सिर्फ मोक्ष का मार्ग बताते है, परंतु किसी को भी उस मार्ग पर चलने के लिए दबाव नहीं करते है ।

प्रभु भी कहते है–**'यह कल्याण का मार्ग है, यह अकल्याण का मार्ग है, अब जो ठीक लगे, वह करो ।'**

साधु को भी सिर्फ उपदेश की भाषा बोलनी चाहिए, आदेश की भाषा नहीं ।

प्रभु पूजा करनी चाहिये, यह कहना चाहिए, परंतु तुम प्रभु पूजा करो, **'तुम पूजा की बाधा लोंगे तो ही मैं तुम्हारे घर गोचरी बहोरुंगा ।'** ऐसी आदेश या दबाव की भाषा कभी नहीं बोलनी चाहिए ।

आदेश की भाषा बोलने में कई दोष पैदा होते है ।

सामनेवाला आदेश का पालन नहीं करेगा तो क्रोध भी आ सकता है ।

अपना आदेश सामनेवाला पालन करेगा तो शायद अपना अभिमान भी पुष्ट हो सकता है, अतः प्रभु ने संयमी की सुरक्षा के लिए आदेश नहीं, किंतु उपदेश की भाषा का प्रयोग करने की आज्ञा प्रदान की है ।

❄ **योग्य आत्मा को उपदेश देना यह अपना फर्ज है, परंतु उसका पालन करना या नहीं करना वह उसके ऊपर छोड देना चाहिए, इसी में अपना हित रहा हुआ है ।**

26. शासन-रक्षा

सौराष्ट्र के महुवा शहर में पार्श्वनाथ संतानीय पू. आचार्य श्री यक्षदेवसूरिजी म. चातुर्मास बिराजमान थे ।

एक दिन आसपास रहनेवाले म्लेच्छों ने नगर पर आक्रमण किया ।

पूज्य आचार्य भगवंत समयज्ञ थे, उन्हें ख्याल आ गया कि ये दुष्ट लोग जिन मंदिर के साथ जिन प्रतिमाओं को भी नष्ट कर देंगें ।

उन्होंने श्रावक संघ को जागृत किया, परंतु वे अपने ही घर-परिवार की चिंता में मग्न दिखाई दिए ।

पूज्य आचार्य भगवंत ने अवसर देखकर रात्रि में ही मंदिर में से प्रतिमाजी की उत्थापन विधि कर अपने शिष्य को एक-एक प्रतिमा ले जाने की जवाबदारी सौंप वहां से विहार करा दिया ।

प्रातः काल में वे म्लेच्छ आए, प्रतिमाजी को नहीं देखा तो उन्हें एक खम्भे से बांध दिया ।

थोडी देर बाद जब वे म्लेच्छ चले गए, तब एक चौकीदार आकर बोला, **'मैं जैन हूँ !'** संयोगवश उन म्लेच्छों की टोली में जुडा हुआ हूँ, आप यहां से जल्दी भाग जाओं ।

उसने आचार्य भगवंत के बंधन दूर किये । आचार्य भगवंत वहां से रवाना हो गए ।

आगे चलकर वे किसी गांव में पहुँचे । वहां का संघ इकट्ठा हुआ । कई श्रावकों ने अपने तेजस्वी पुत्र पूज्य आचार्य भगवंत के चरणों में समर्पित किये और उनके शिष्य बनाए ।

इस प्रकार कष्ट सहन करके भी यक्षदेवसूरिजी म. ने जिन शासन की रक्षा की इस प्रसंग से प्रेरणा लेकर हमें भी अपनी शक्ति के अनुसार शासन पर आई आपत्तियों को दूर करने में प्रबल पुरुषार्थ करना चाहिये ।

27. प्रायश्चित्त स्वीकार करें

छद्मस्थ अवस्था में कदम कदम पर भूलें होने की आशंकाएं रहती है ।

भूल हो जाना इतना बुरा नहीं हैं, जितना भूल हो जाने के बाद उस भूल का स्वीकार न करना, बुरा है ।

मुनि जीवन को सफल बनाना हो तो अपने व्रत-महाव्रत आदि में लगे दोषों की शुद्धि अवश्य करनी चाहिए ।

भूल तो एक रोग के समान है । रोग का ख्याल आते ही उसका इलाज होना जरुरी है । रोग का इलाज न हो तो वह धीरे धीरे बढता जाता है । अतः डॉक्टर के आगे अपने रोग को प्रकट करने में ही अपना हित है ।

अपने संयम जीवन में होनेवाली भूलें रोग के स्थान पर है और उन रोगों के चिकित्सक गुरु भगवंत है । जाने-अनजाने में जो भी भूलें हुई हो, उन्हें सच्चे दिल से गुरु के आगे प्रकट करने में ही अपना हित रहा हुआ है ।

जीवन में मन, वचन और काया तीनों से पापों का सेवन होता है, अतः उन सभी प्रकार के पापों की शुद्धि होना जरुरी है ।

जीवन में सबसे ज्यादा पाप मन से होते हैं, उन पापों का भी शुद्धिकरण खूब जरुरी है ।

❊ रुक्मि राजा और लक्ष्मणा साध्वी आदि के मानसिक पापों का भी कितना कटु परिणाम आया । यह हम सब जानते ही हैं, अतः मन में लेश भी माया-कपट किए बिना अपने पापों का शुद्धिकरण अवश्य करना चाहिए ।

भूत काल में अपनी भूलों को छिपाने का कार्य तो बहुत बार किया है और ऐसा कर अपने दोषों को ही बढावा दिया है । भूलों को सुधारने के लिए इस जीवन में स्वर्णिम अवसर मिला है, अतः वह अवसर न चूके !

28. स्वदोष दर्शन-आत्म निरीक्षण

मानव मात्र को दो आंखें मिली है, परंतु वे आंखें दूसरों को देख सकती हैं, स्वयं को नहीं ।

अनादि के कुसंस्कारों के कारण जीवात्मा को अन्य में रहे दोष तुरंत दिखाई देते हैं, परंतु स्वयं में रहे दोषों की ओर नजर भी नहीं जाती हैं । गुण हमेशा स्वयं के ही दिखते है और दोष दूसरों के ही ।

अनादि की इस बुरी आदत से छूटकारा पाने के लिए स्वदोष दर्शन और पर गुण दर्शन गुण खूब जरुरी है ।

जो स्वदोष दर्शन करेगा, वही अपने दोषों का प्रायश्चित्त कर सकेगा ।

प्रायश्चित्त करने से अपना चित्त स्वस्थ व निर्मल बन जाता है ।

स्वदोष दर्शन अर्थात् आत्म निरीक्षण करने से ही पता चलता है कि मेरी आत्मा में कितने भयंकर दोष रहे हुए है ।

खुद के ही घर में आग लगी हो वह दूसरों की चिंता कैसे करेगा ?

अपने दोषों के देखनेवाला ही सच्चा साधक बन सकता है । सच्चा साधक वही है जो दूसरों के दोष देखने में अंध होता है । दूसरों के दोष बोलने में मुक (मुंगा) होता है तथा दूसरों के दोष सुनने में बधिर अर्थात् बहेरा होता है ।

अपनी ही आत्मा में जब अनंत दोष रहे हुए हैं तो हम दूसरों की पंचायत क्यों करें ?

अपना ही घर जल रहा हैं तो उसकी उपेक्षा करना कहां तक उचित है ?

29. पानी के काल में सावधानी

चातुर्मास में पानी का काल तीन प्रहर होता है । दिन में उबाला हुआ पानी दो बार लाया जाता है । जबकि कार्तिक चातुर्मास में पानी का काल चार प्रहर होता हैं और गृहस्थ लगभग दिन में एक ही बार पानी उबालते है । उन चार मास में गर्मपानी पीनेवाले चतुर्विध संघ को विशेष सावधानी जरुरी है ।

कई बार सूर्योदय से पहले पानी उबाल दिया जाता है, जो सूर्यास्त के पूर्व ही सचित्त हो जाता है ।

अतः खास कर उन दिनों में श्रावकों को भी यह विवेक रखना चाहिए कि पानी सूर्योदय के पूर्व नहीं उतारना चाहिए । पानी बहोरते समय यह ख्याल होना चाहिए कि यह पानी उबालकर कब उतारा गया है ? यह विवेक न रखे तो भूल से भी सचित्त जलपान का दोष लग जाता है अतः इस विषय में विशेष सावधानी रखनी चाहिए ।

30. पारिष्ठापनिका समिति

साधु की आठ प्रवचन माताओं में पांचवें नंबर की माता का नाम है पारिष्ठापनिका समिति !

❁ **जन्मदात्री माँ के प्रति खूब आदर भाव जरुरी है तो संयम पुत्र को जन्म देनेवाली माँ के प्रति कितना आदर भाव जरुरी है ।**

आज इस माँ की उपेक्षा हो रही है । इस माँ की भी उपेक्षा करने योग्य नहीं है । माँ की गोद में ही नवजात शिशु की सुरक्षा है, उसी प्रकार संयम की सुरक्षा भी इस माँ के सान्निध्य में ही है ।

अपने मल-मूत्र व अन्य अनुपयोगी वस्तु को निर्जीव भूमि में विधिवत् परठना चाहिए ।

परठवने के पूर्व **'अणुजाणह जस्सुग्गह'** (जिसका अवग्रह हो, वह मुझे अनुमति प्रदान करे) तथा परठवने के बाद **'वोसिरे-वोसिरे-वोसिरे'** अवश्य बोलना चाहिए ।

31. साधु जीवन में संयम यात्रा प्रधान है

गृहस्थ मोह माया के जाल में फंसे हुए हैं, अतः उस माया से मुक्ति पाने के लिए गृहस्थ को वर्ष में कम से कम एक बार तीर्थ यात्रा के लिए अवश्य जाना चाहिए ।

गृहस्थ को संयम जीवन की Training के रुप में छह नियमों के पालन के साथ तीर्थ यात्रा करनी चाहिए ।

गृहस्थ को तीर्थ यात्रा दरम्यान जिन छह नियमों का पालन करने का होता है, उन छह नियमों का पालन तो साधु-जीवन में हमेशा करना होता है ।

जैसे-पाद विहार, एकासना, सचित्त का त्याग, ब्रह्मचर्य पालन, प्रतिक्रमण और सम्यक्त्व-स्वीकार ।

संयम जीवन के अभ्यास Training के रुप में श्रावक के लिए इन कर्तव्यों के पालन की प्रधानता है ।

साधु जीवन में इन कर्तव्यों का हमेशा पालन होने से साधु जीवन में तीर्थ यात्रा प्रधान नहीं है । हाँ ! किसी गृहस्थ को प्राचीन महान् तीर्थ की यात्रा करनी, करानी हो तब उन्हें निश्रा प्रदान करने के लिए और उनको धर्मदेशना देने के लिए साधु भी तीर्थ यात्रा में जुडे, यह अलग बात है, परंतु उनके लिए तीर्थ यात्रा मुख्य नहीं है ।

मुख्यतया संयम की यात्रा में ही भव यात्रा का अंत लाने की ताकत है, अतः संयम जीवन में संयम यात्रा को ही प्रधानता देनी चाहिए । संयम यात्रा का पालन करते हुए कभी तीर्थ यात्रा भी हो जाय तो अपने भावों की वृद्धि के लिए तीर्थ यात्रा भी अवश्य करनी चाहिए, परंतु संयम की आराधना को हानि पहुँचे, इस ढंग से तो तीर्थ यात्रा को प्रधानता नहीं देनी चाहिए ।

32. प्राकृत-संस्कृत भाषा अनिवार्य है

Bible को समझना है तो अंग्रेजी भाषा का ज्ञान जरुरी है । क्रिश्चियन धर्म के रहस्य को जानने के लिए अंग्रेजी का बोध व Bible का बोध जरुरी है ।

❁ **इस्लाम धर्म के रहस्य को जानना है तो कुरान का अभ्यास और ऊर्दु भाषा का ज्ञान जरुरी है ।**

❁ हिन्धु धर्म को समझना है तो संस्कृत भाषा का ज्ञान और गीता, महाभारत, वेद, पुराण और उपनिषद का अभ्यास जरुरी है ।

❁ **उसी प्रकार जैन धर्म के मर्म को यदि जानना व समझना है तो उसकी मूल भाषा प्राकृत व संस्कृत का ज्ञान होना जरुरी है ।**

अपनी दैनिक आराधना के सभी सूत्र प्राकृत भाषा में है ।

❁ प्रातः उठते ही नवकार महामंत्र का स्मरण करते है, वह भी प्राकृत भाषा में है ।

❁ **फिर नवकारसी-पोरिसी-एकासना आदि का पच्चक्खाण लेते हैं, वह भी प्राकृत भाषा में है ।**

❁ फिर सामायिक करते है-उसके सूत्र भी प्राकृत में है ।

❁ मंदिर में चैत्यवंदन-देववंदन आदि करते हैं वे भी सूत्र प्राकृत में है ।

❁ **शाम को प्रतिक्रमण करते है, वे सभी सूत्र प्राकृत में है ।**

❁ रात्रि में संथारा पोरिसी पढाते हैं, वे सभी सूत्र प्राकृत भाषा में है ।

इस प्रकार साधु जीवन और श्रावक जीवन की सभी आराधनाओं के सभी सूत्र प्राकृत भाषा में है ।

❁ जैनों के मूल आगम सूत्र, जो प्रभु की वाणी स्वरुप हैं, वे भी प्राकृत भाषा में है ।

उन आगमों के आधार पर भूतकाल में अनेक आचार्य भगवंतों ने प्राकृत व संस्कृत भाषा में हजारों-लाखों ग्रंथों का सर्जन किया है ।

उन ग्रंथों के रहस्य को हम तभी प्राप्त कर सकते हैं जब हमें उन भाषाओं का ज्ञान होगा ।

❁ कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्यजी ने सच्चे भगवान अरिहंत परमात्मा और उनके सच्चे मार्ग को जानने समझने के लिए कुमारपाल महाराजा के लिए **वीतराग स्तोत्र** और **योग शास्त्र** ग्रंथ की रचना संस्कृत भाषा में की थी, जिनका कुमारपाल महाराजा प्रतिदिन स्वाध्याय करते थे । उन ग्रंथों को समझने के लिए उन्होंने एक वर्ष तक कडी महेनत करके संस्कृत भाषा का ज्ञान प्राप्त किया था ।

वर्तमान जैन संघ का दुर्भाग्य है कि आज श्रावक-श्राविकाओं के लिए तो संस्कृत-प्राकृत भाषा पराई हो गई है और विदेशी अंग्रेजी भाषा को अपने पूरे व्यवहार में अपना लिया है । उसी का फल है कि आराधना क्रियाएं करते हुए चेहरे पर उसका आनंद नजर नहीं आता है ।

साधु-साध्वीजी तो जैन धर्म के आराधक के साथ प्रभावक व प्रचारक भी है, अतः उन्हें तो इन दोनों भाषाओं का ठोस व गहन अभ्यास होना ही चाहिए ।

प्रभु शासन के मर्म को स्वयं नहीं समझेंगें तो वे दूसरों को कैसे समझा पाएंगें ?

प्राकृत व संस्कृत भाषा अर्थ गंभीर है, उसके एक शब्द के भी अनेक अर्थ होते हैं ।

जैन शासन के रहस्य इन भाषाओं से प्राप्त होंगें, वे रहस्य अन्य किसी भी प्रांतीय भाषाओं से प्राप्त नहीं हो सकते, अतः इन भाषाओं के ठोस ज्ञान की प्राप्ति का अवश्य प्रयत्न होना चाहिए ।

33. बडों के दोष न देखों

किसी के भी दोष देखना खराब है, फिर भी बडों के दोष देखना तो बहुत ही बूरा है और उसमें भी गुरु के दोष देखना तो बहुत ही खतरनाक है ।

गुरु आखिर छद्मस्थ है, उनमें भी दोष होने की संभावना है परंतु उन दोषों को देखने से, उन दोषों को बोलने से अथवा उन दोषों को बार बार सुनने से हम अपने संयम जीवन की चादर को मलिन कर देते है ।

साधक का तो लक्षण है–

'परप्रवृत्तौ बधिरान्धमूकः'

पराई पंचायत करने में वह अंध, बधिर और मूक होता है ।

सभी जीव कर्मवश हैं, अतः जब तक छद्मस्थ दशा है, तब तक सभी में दोष रहने वाले हैं, अतः दोष देखना ही हो तो स्वयं के देखें-दूसरों के तो गुण ही देखने में लाभ है ।

दूसरों के दोष देखने से और बोलने से निंदा का पाप लगता है तो साथ में वे दोष भविष्य में अपने जीवन में भी आए बिना रहते नहीं है, अतः जीवन में गुणग्राही बनना चाहिए !

बडों के प्रति विनय भाव रखना चाहिये । उपकारी हो तो उनके प्रति पूज्यता के साथ कृतज्ञता का भाव भी रखना चाहिए ।

गुण दृष्टि रखने से सामनेवाले में रहे गुण अपने जीवन में आते है और दोषदृष्टि रखने से सामनेवालों में रहे दोष अपने जीवन में आए बिना नहीं रहते हैं, अतः अपनी दृष्टि को गुणग्राही बनाने के लिए विशेष प्रयत्न करना चाहिए ।

34. खामेमि-मिच्छामि-वंदामि

हम सबका आयुष्य सोपघाती है । अपने आयुष्य पर कब कौनसा उपघात लग जाएगा, पता नहीं है । अतः जीवन के हर दिन को जीवन का अंतिम समय मानकर अपनी मृत्यु को मृत्यु-महोत्सव बनाने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए ।

'संथारा-पोरिसी' के माध्यम से हर साधु-साध्वी व श्रावक-श्राविका को अंतिम आराधना करने की होती है ।

'खमिअ खमाविअ मइ खमह, सव्वह जीव निकाय' इस गाथा के माध्यम से जगत् के जीव मात्र के साथ क्षमापना की जाती है ।

इस जगत् में मेरा कोई शत्रु नहीं है और सभी जीव मेरे मित्र हैं–इस प्रकार की भावना से आत्मा को भावित करना चाहिए ।

संसार में कदम-कदम पर हिंसा आदि पाप रहे हुए है यद्यपि संयम जीवन में सभी पापों का त्याग होता हैं, फिर जाने-अनजाने में उन पापों का सेवन हो गया हो तो उसके लिए सागारिक अनशन अर्थात् संथारा पोरिसी के माध्यम से उन सभी पापों को वोसिराया जाता हैं । वे सभी पाप मोक्ष मार्ग की आराधना साधना में कंटक तुल्य है, अतः उन सभी पापों के लिए हृदय से **'मिच्छा मि दुक्कडम्'** दिया जाता है । मेरे वे सभी पाप मिथ्या हो, इस प्रकार की भावना से आत्मा को भावित किया जाता है ।

❄ **कर्म के पाश से बद्ध आत्मा को उस कर्म पाश से मुक्त होने के लिए कर्म-मुक्त ऐसे अरिहंत आदि की शरण ही परम आधार है ।**

❄ संथारा पोरिसी में **'अरिहंते सरणं पवज्जामि'** आदि के माध्यम से अरिहंत आदि की शरणागति का स्वीकार किया जाता है ।

इस प्रकार **'खामेमि, मिच्छामि और वंदामि'** की आराधना हमारी आत्मा को मृत्यु समय में समाधि प्रदान करने में सक्षम है ।

35. एकांत खतरनाक है

पत्नी को प्रियतम का मिलन एकांत में ही होता है, उसी प्रकार प्रभु के साथ मिलन के लिए भी एकांत चाहिए ।

उत्तम आत्माओं के लिए एकांत लाभकारी हैं परंतु अपरिपक्व साधु के लिए तो गुरु का सान्निध्य ही लाभकारी है ।

गुरुकुलवास में रहे साधु को गुरूदेव की नजर पडे, वैसी ही जगह में बैठना चाहिए ।

गुरू की नजर में हो तो गुरू की आज्ञा पालन, सेवा का लाभ मिल सकता है ।

दुनियाँ में गलत काम एकांत में ही होते है, अतः गलत प्रवृत्तियों से बचने के लिए गुरू के सान्निध्य में ही बैठना चाहिए ।

कई बार एकांत में ही मन में खराब विचार आते है । एकांत देखकर ही व्यक्ति पाप में प्रवृत्त होता है, अतः अपने संयम की सुरक्षा के लिए गुरू के सान्निध्य में ही बैठना चाहिए ।

मन अपनी कार्यसिद्धि के लिए हमेशा एकांत ढुंढता रहता है । मन में पाप आ जाने के बाद जब एकांत मिलता है, तब वह पाप, प्रवृत्ति में आए बिना नहीं रहता है ।

बुरा काम करनेवाला हमेशा एकांत देखता है । चोरी करनेवाला भी चोरी **'कोई न हो'** तभी करता है । सामने कोई देख रहा हो तो **'चोरी करने की इच्छा हो'** तो भी चोरी नहीं कर पाता है क्योंकि जीवात्मा की यह कमजोरी है कि दूसरों की उपस्थिति में वह अपने आपको अच्छा ही दिखाना चाहता हैं । इस गलत आदत के कभी शिकार न बन जाय, अतः एकांत छोडकर गुरू व गुरू भाइयों के बीच ही रहना चाहिए । संयम जीवन में भी गुरू सान्निध्य में ही सुरक्षा कही है ।

36. काप में सावधानी

मलिन हुए वस्त्रों को गृहस्थ धोते हैं, उसके पीछे असंख्य जीवों की विराधना होती है ।

गृहस्थ कच्चे पानी में ही कपडे धोते हैं । कपडों का गंदा पानी भी नाली में बहता है । उसमें त्रस-स्थावर जीवों की विराधना चालू रहती है ।

गृहस्थ, शरीर शणगार आदि के लिए वस्त्र धोते हैं, उनका इस्त्री आदि करते है ।

श्रमण जीवन में शरीर व वस्त्र की विभूषा तो श्राप रुप है ।

फिर भी वस्त्रों का काप निकालना पडे तो उसमें निम्न सावधानी अवश्य रखें ।

1. जल्दी-जल्दी काप नहीं निकालना चाहिए । कम से कम 15 दिन बाद निकाले ।

2. काप के पूर्व वस्त्रों की दृष्टि पडिलेहना अवश्य करें ।

3. साबून के पानी में मक्खी आदि की विराधना से बचने के लिए पास में राख अवश्य रखें ।

4. काप निकालते समय मौन रहना चाहिए ।

5. पानी का कम से कम उपयोग करें । फिर भी कपडों में साबून न रहे, उसका अवश्य ध्यान रखें ।

6. काप निकालने के बाद परात-बाल्टी आदि को स्वच्छ जल से बराबर साफ करना चाहिए ।

7. अपने काप का भी प्रायश्चित्त अवश्य लेना चाहिए ।

37. सद्गुरु के दो आशीर्वाद

1) धर्मलाभ :

दीर्घायुर्भव भण्यते यदि सदा तन्नारकाणामपि,
धनवान् भवेद्यदि पुनस्तन्म्लेच्छकानामपि ।
संतानाय च पुत्रवान् भव पुनस्तत् कुक्कुटानामपि,
विश्वे सर्वसुखप्रदो विजयतां श्री धर्मलाभः श्रिये ।।

जैन साधु को कोई वंदन करे तो वे आशीर्वाद के रूप में **'धर्मलाभ'** ही कहते हैं ।

भिक्षा के लिए किसी के घर में प्रवेश करते समय जैन साधु **'धर्मलाभ'** ही कहते हैं ।

जैन साधु को भिक्षा में दान देने पर वे **'धर्मलाभ'** ही कहते हैं ।

दुनिया में अनेक प्रकार के आशीर्वाद प्रसिद्ध हैं । किसी ब्राह्मण का सत्कार-सम्मान किया जाता है और वह–

धनवान् भव, आयुष्यमान् भव, पुत्रवान् भव, शतायु भव, चिरंजीवी भव, दीर्घायु भव इत्यादि आशीर्वाद देते हैं, जबकि जैन साधु आशीर्वाद के रूप में 'धर्मलाभ' ही कहते हैं ।

ऐसा क्यों ?

इसका एक ही जवाब है, अन्य सभी आशीर्वाद अपूर्ण हैं । सांसारिक उन वस्तुओं की प्राप्ति हो जाने के बाद भी सुख प्राप्त ही होगा, ऐसी कोई गारंटी नहीं है ।

दीर्घ आयुष्य तो नरक के जीवों के भी होता है, वह दीर्घायुष्य उनके लिए सुखदायी नहीं होता है ।

Blood या Bone-Cancer के दर्दी को सौ वर्ष जीने का आशीर्वाद दे तो वह उसे मंजूर नहीं होगा ।

इससे सिद्ध होता है कि सिर्फ दीर्घायुष्य, सुख की आधार-शिला नहीं है ।

'धनवान् भव' का आशीर्वाद दिया जाय तो यह धन तो किसी वेश्या, तस्कर व मच्छीमार के पास भी हो सकता है ।

सिर्फ धन आ जाने मात्र से व्यक्ति सुखी बन जाएगा, ऐसी कोई गारंटी नहीं है ।

धन के साथ यदि Cancer या Aids की बीमारी हो तो वह धन उस व्यक्ति के लिए सुख का कारण नहीं बन पाएगा ।

मात्र **'धन होना'** कोई **'सुखी'** होने की निशानी नहीं है ।

'धन' होने के बाद भी व्यक्ति महा दुःखी हो सकता है ।

धन हो लेकिन पुत्र न हो तो भी संसारी जीव अपने आपको सुखी नहीं मानता है । अतः **'धनप्राप्ति का आशीर्वाद भी अधुरा है' ।**

'पुत्रवान् भव' की आशीर्वाद देवे तो गधी के भी अनेक संतानें होती हैं, मुर्गी के भी अनेक बच्चे होते हैं और सुअर के भी अनेक बच्चे होते हैं, परंतु इतने मात्र से वे सुखी नहीं होते हैं ।

सिर्फ संतानें हों परंतु वे आज्ञांकित न हों तो ऐसी संतान-प्राप्ति का भी कोई अर्थ नहीं है ।

पैदा होनेवाली संतान सपूत ही होगी, ऐसी भी कोई गारंटी नहीं है, वह संतान कपूत भी निकल सकती है ।

कपूत संतान बाप की इज्जत को मटियामेल कर देती है, अतः ऐसी संतानों की प्राप्ति का भी कोई अर्थ नहीं है ।

तात्पर्य यही है कि दुनिया का कोई भी पदार्थ व्यक्ति को सुखी बनाने की गारंटी नहीं देता है ।

बस, एक मात्र धर्म ही जीवात्मा को सुखी बनाने में समर्थ है ।

जैन साधु इसीलिए **'धर्मलाभ'** का आशीर्वाद देते हैं । जीवन में धर्म आ जाय तो व्यक्ति पूर्ण सुखी हो सकता है ।

धर्म ही आत्मा को **'पूर्णता'** प्रदान करने में सक्षम है ।

2) नित्थारग पारगा होह :– सद्गुरु के पास जब आशीर्वाद के रुप में वासक्षेप लिया जाता है, तब वासक्षेप डालते समय **'नित्थारग पारगा होह'** का आशीर्वाद देते हैं । इसका अर्थ है–**'तुम जल्दी ही इस संसार सागर से पार उतर जाओ ।'**

पुण्य के योग से फ्लेट, फेन, फोन, फ्रिज और फ्लाइट मिल जाय इतने मात्र से ही व्यक्ति सुखी नहीं बन जाता है ।

यदि इन बाह्य भौतिक सामग्रियों की प्राप्ति से व्यक्ति सुखी बनता हो, तब तो अमाप संपत्ति व समृद्धि के मालिक देवता, ज्यादा सुखी होने चाहिए । परंतु वे भी पूर्ण सुखी नहीं हैं, क्योंकि ईर्ष्या व लोभ के कारण वे भी दुःखी हैं । एक दिन तो उनका भी आयुष्य पूर्ण हो जानेवाला है । देवलोक के दिव्य सुखों को छोड़कर उन्हें भी माँ के गर्भ में आना पड़ता है । वे भी चार गति के संसार-भ्रमण से मुक्त कहाँ बने हैं ? अतः परम सुखी तो मोक्ष में गए परमात्मा ही हैं ।

सद्गुरु हमारे सच्चे हितचिंतक हैं, अतः वे हमें आत्मा से परमात्मा बनने का श्रेष्ठ आशीर्वाद प्रदान करते हैं ।

धन, पुत्र, परिवार आदि की प्राप्ति का आशीर्वाद पूर्ण नहीं है, अतः सद्गुरु भगवंत वासक्षेप डालते समय भवसागर से पार उतरने का ही आशीर्वाद देते हैं ।

शिष्य को सूत्र आदि की अनुज्ञा प्रदान करते समय भी गुरु भगवंत **'नित्थारग पारगा होह'** का आशीर्वाद प्रदान करते हैं ।

38. साधु की विशेषताएँ

◆ उपसर्गों को सहन करने में साधु पर्वत जैसे होते हैं । आंधी और तूफान आने पर भी पर्वत अपने स्थान से विचलित नहीं होता है, उसी प्रकार भयंकर से भयंकर उपसर्गों में भी साधु चलायमान नहीं होते हैं ।

◆ साँप कभी अपना बिल नहीं बनाता है । वह चूहे के बनाए गए बिल में रहता है । उसी प्रकार साधु अपने रहने के लिए अपना घर नहीं बनाते हैं, बल्कि गृहस्थ ने अपने लिए, अपनी आराधना के लिए जो भवन बनाया होता है, उसी में साधु रहते हैं ।

साधु सागर के समान गंभीर होते हैं ।

◆ नदी में थोड़ा सा ज्यादा पानी आता है और वह उछलने लग जाती हैं, भयंकर तबाही मचा देती है, परंतु सागर में चाहे जितना पानी आ जाय वह कभी उछलता नहीं है ।

◆ सागर में रत्न होते हैं इसीलिए वह रत्नाकर कहलाता है, नदी में नहीं !

◆ सागर में चाहे जितना ज्वार आए, वह अपनी मर्यादा को तोड़ता नहीं है । नदी में पानी बढ़ते ही वह दीवारों को तोड़ देती है ।

साधु सागर जैसा होता है, नदी जैसा नहीं ।

◆ पुण्योदय से चाहे जितना मान-सम्मान मिले, वह सागर की तरह गंभीर रहेगा, नदी की तरह उछलेगा नहीं ।

◆ ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूपी रत्न होने से मुनि सागर कहलाते हैं ।

◆ प्राणांत उपसर्ग आने पर भी साधु अपनी आचार-मर्यादा का भंग नहीं करते हैं ।

◆ साधु वृक्ष जैसे होते हैं –

अपने सान्निध्य में आनेवाले को वृक्ष शीतल छाया और मीठे फल देता है । उसी प्रकार साधु अपने सान्निध्य में आनेवाले के भव के संताप को दूर करते हैं और रत्नत्रयी रूपी फल (मोक्ष) प्रदान करते हैं ।

ईंट, सीमेंट, रेती सभी अलग-अलग होते हैं, उनके परस्पर मिलने से कोई मकान खड़ा नहीं होता है, उसके लिए तो चाहिए पानी ।

जिस प्रकार पानी अलग-अलग को जोड़ने का काम करता है, उसी प्रकार साधु की वाणी भी पानी जैसी होनी चाहिए ।

दीवार बनने के बाद पानी उसमें से उड़ जाता है, उसी प्रकार साधु भी अपनी वाणी द्वारा दो जीवों के संक्लेश को दूर कर स्वयं अलग हो जाते हैं, अलिप्त हो जाते हैं ।

39. गुरु से मेल जरुरी है

स्त्री चाहे जितनी सुंदर क्यों न हो, सभी कलाओं में पारंगत हो परंतु उसका पति के साथ मेल न हो तो सब व्यर्थ है ।

बस, इसी प्रकार शिष्य मे चाहे जितने गुण हो, त्याग हो, तप हो, संयम हो, ज्ञान हो, प्रवचन शक्ति हो, प्रभावक वाणी हो परंतु सिर्फ गुरु के साथ मेल न हो तो सब निरर्थक है ।

भारी कर्मी जीवों को सबके साथ Set होता हैं, परंतु सिर्फ गुरु के साथ नहीं !

शिष्य-कुशिष्य

शिष्य अर्थात् गुरु के हृदय को शांत करनेवाले, गुरु की इच्छा के अनुसार चलनेवाले, कुशिष्य अर्थात् गुरु के हृदय को जलानेवाले, गुरु की इच्छा से सदैव विपरीत चलनेवाले, ऐसे कुशिष्य दुर्लभबोधि बनते हैं । जो गुरु को समर्पित है, वे सुलभबोधि बनते हैं ।

40. सद्गुरु-उपासना

गुरुर्नेत्रं गुरु द्वीपः, सूर्यचन्द्रमसौ गुरुः ।
गुरुर्देवो गुरुः पन्था, दिग्गुरुः सद्गतिर्गुरु ।।

अर्थ :– सद्गुरु तो आँख है, सद्गुरु द्वीप है, सद्गुरु सूर्य और चंद्र है । सद्गुरु तो देवता है, मार्ग है, दिशा है और सद्गति है ।

वस्तु विद्यमान होने पर भी आँख के अभाव में दिखाई नहीं देती है । दुनिया को देखने के लिए आँख चाहिए । सद्गुरु ऐसी आँख हैं जिसके सहारे हमें दुनिया के यथार्थ स्वरूप का बोध होता है ।

सद्गुरु के संयोग के अभाव में दुनिया के यथार्थ स्वरूप को कौन समझाएगा ?

दुनिया स्वार्थ से भरी हुई है । जब तक स्वार्थ सिद्ध होता है, तब तक संबंध टिका रहता है । सद्गुरु ही हमें जगत् की स्वार्थ वृत्ति का सही परिचय कराते हैं ।

समुद्र में चारों ओर पानी हो, उस समय उससे बचने के लिए द्वीप का ही आधार होता है, उसी प्रकार इस संसार रूपी महासागर के उपद्रवों से बचने के लिए सद्गुरु ही द्वीप समान है ।

अज्ञान के गाढ़ अंधकार को दूर करने में सद्गुरु सूर्य के समान हैं । सूर्य के अस्तित्व में अंधकार टिक नहीं सकता, उसी प्रकार सद्गुरु के सान्निध्य में अज्ञान व मोह का अंधकार टिक नहीं पाता है ।

चंद्रमा में शीतलता है, उसी प्रकार सद्गुरु के सान्निध्य में कषायों की आग शांत हो जाती है और प्रशम-भाव की शीतलता का अनुभव होता है । देवता के पास भौतिक समृद्धि होती है, परंतु सद्गुरु तो आध्यात्मिक समृद्धि के भंडार होते हैं । उनकी आराधना उपासना करने से हमें आध्यात्मिक संपत्ति की प्राप्ति होती है ।

मोक्ष के यथार्थ मार्ग को बतानेवाले होने से गुरु भगवंत मार्ग-स्वरूप भी हैं ।

गुरु भक्ति

धन्ना ते जीअलोए, गुरवो निवसंति जाण हिययंमि ।
धन्नाण वि सो धन्नो, गुरूण हिअए निवसइ सो उ ।।

(पंच वस्तु)

वे शिष्य धन्यवाद के पात्र हैं, जिनके हृदय में गुरु का वास हैं, परंतु वे शिष्य तो धन्यातिधन्य हैं, जो गुरु के हृदय में बसते हैं ।

इस भवसागर से पार उतरने के लिए गुरु का आलंबन अत्यंत ही जरूरी है...इसके लिए अपने हृदय में गुरु की प्रतिष्ठा अवश्य होनी चाहिए ।

जिसके हृदय में गुरु का वास है, वह गुरु से कोसों दूर होने पर भी गुरु के पास है और जिसके हृदय में गुरु का वास नहीं है, वह प्रतिदिन गुरु के चरणों में या पास में ही बैठता हो तो भी वह गुरु से कोसों दूर है ।

गुरु को हृदय में बसाने के लिए गुरु के प्रति पूर्ण आदर भाव चाहिए । गुरु की हर आज्ञा का उत्साह पूर्वक पालन होना चाहिए ।

गुरु जो आज्ञा करे, उसका पालन करने में मन में लेश भी खेद नहीं होना चाहिए ।

जिस प्रकार फूल की माला अथवा रत्न के हार को गले लगाते हैं, उसी प्रकार गुरु की आज्ञा को भी उतने ही प्रेम से स्वीकार करना चाहिए ।

गुरुपारतन्त्र्यमेव च तद्बहुमानात् सदाशयानुगतम् ।
परमगुरुप्राप्तेरिह बीजं तस्माच्च मोक्ष इति । (षोडशक)

1444 धर्मग्रंथों के प्रणेता **सूरिपुरंदर श्री हरिभद्रसूरिजी म.** ने षोडशक ग्रंथ में सद्गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए बहुत ही सुंदर बात कही है कि विद्यमान सद्गुरु की अधीनता के स्वीकार, उनकी आज्ञा के पालन एवं उनके प्रति पूर्ण आदर भाव रखने से भविष्य में परम गुरु अर्थात् परमात्मा का योग होता है ।

वर्तमान काल में हमें परमात्मा प्रत्यक्ष रूप से तो प्राप्त नहीं हुए हैं । भरत क्षेत्र में भगवान महावीर के बाद 84000 वर्ष तक साक्षात् परमात्मा का विरह रहेगा-प्रभु के इस विरह को तोड़ना हो तो इसके लिए सर्वश्रेष्ठ उपाय

है–वर्तमान काल में विद्यमान सद्गुरु की पराधीनता को स्वीकार करना । पराधीनता अर्थात् उनकी आज्ञा के अधीन रहना । सद्गुरु जो भी आज्ञा करे, उस आज्ञा का सद्भाव पूर्वक पालन करना ।

अपने उपकारी गुरुदेव के प्रति हृदय में आदर-बहुमान न हो तो उनकी आज्ञा का पालन कैसे होगा ? बहुमान के अभाव में किया गया आज्ञा का पालन भी दंभ मात्र है ।

इस भयंकर कलियुग में जिसे शीघ्र मोक्ष प्राप्त करना हो, उसका श्रेष्ठ उपाय गुरु-पारतंत्र्य ही है । गुरु की अधीनता का स्वीकार तो परम गुरु की प्राप्ति का बीज है ।

अभक्तिर्मानसे येषां, गुरौ भवति भूयसी ।
पापानुबन्धिपापेन, तेषां जन्मेति लक्ष्यते ।। धर्मरत्न करंडक

महान् पुण्य के उदय से सद्गुरु की प्राप्ति होने के बाद भी जिसके अन्तर्मन में सद्गुरु के प्रति भक्ति भाव नहीं है, सच मायने में उसका जन्म निरर्थक ही है । वास्तव में उसे पापानुबंधी पाप का ही उदय माना जाएगा ।

पुण्यानुबंधी पुण्य के उदय से प्राप्त सामग्री आत्मा के लिए एकांत हितकारक होती है, जबकि पापानुबंधी पुण्य या पाप के उदय से प्राप्त सामग्री आत्मा के लिए एकांत अहितकर होती है ।

यद्यपि पुण्य के उदय बिना देव-गुरु-धर्म की सामग्री प्राप्त नहीं होती है परंतु दुर्भागी व्यक्ति पुण्योदय से प्राप्त सामग्री को भी पापोदय में बदल देता है ।

पापानुबंधी पाप के उदय से प्राप्त सामग्री आत्मा का अधो-पटन कराती है । पुण्योदय बिना सद्गुरु की प्राप्ति नहीं होती है, परंतु गुरु के प्रति हृदय में रहा अबहुमान भाव हमारे पुण्योदय को भी पापोदय में बदल देता है ।

कमभागी है वह शिष्य, जो इस दुर्भाव के कारण अपनी आत्मा को अधः पतन के गर्त में डुबाता है ।

कुलवालक मुनि को सद्गुरु का योग मिला परंतु हृदय में रहे दुर्भाव ने उसकी आत्मा का अधः पतन ही कराया । अतः अपने मन में गुरु के प्रति लेश भी दुर्भाव न आने दें ।

शुद्ध प्ररूपक गुण थकी, जे जिनवर सम भाख्या रे ।
छत्रीश छत्रीशी गुण, शोभित समयमां दाख्या रे ।।

(पद्म वि.म.)

तीर्थंकर के विरह में जैन शासन के राजा आचार्य भगवंत हैं । अपने विशुद्ध देशना गुण के कारण उन्हें तीर्थंकर तुल्य कहा गया है ।

'ठीक ही कहा है'

'तित्थयरसमो सूरि सम्मं जो जिणमयं पयासेइ'

आचार्य के गुण

36 का वर्ग, 36 x 36 = 1296 गुणों के धारक आचार्य भगवंत होते हैं ।

चातुर्विध संघ में श्री आचार्य की प्रधानता होती है । कहा भी है, **'सायरियो संघो ! संघ आचार्य सहित होता है ।'**

पू. लक्ष्मीसूरिजी ने **'बीस स्थानक पूजा'** में लिखा है–

'बारशे छन्नु गुणे गुणवंता, सोहम जंबू महंता'
आयरिया दीठे ते दीठा, स्वरूप समाधि उल्लसंता ।।

आचार्य भगवंत भीम और कांत होते हैं । उनकी एक आँख में अमृत तो दूसरी आँख में आग भी होती है ।

❁ त्रीजे पद आचरज भवि नमो, गुण छत्रीश निधान रे ।

❁ आगम शुद्ध प्ररूपक गुण थकी, जे जिनराज समान रे ।

गुरु आणाए मुक्खो, गुरुप्पसाया उ अट्ठसिद्धीओ ।
गुरु भत्तीए विज्जा-साफल्लं होइ णियमेण ।।1।। (गुरु तत्त्व विनिश्चय)

गुर्वाज्ञा पालन से मोक्ष–

❁ तत्त्वत्रयी के केन्द्र में गुरु तत्त्व को रखा है । इसका अर्थ है-देव और धर्म तत्त्व की पहिचान करानेवाले गुरु ही हैं ।

जिनमंदिर में चाहे जितने भगवान हों, परंतु मंदिर की पहचान तो मूलनायक के नाम से ही होती है । मूलनायक प्रभु मंदिर के केन्द्र में प्रतिष्ठित होते हैं ।

इस जगत् में और उसमें भी भरत क्षेत्र में साक्षात् तीर्थंकरों का अस्तित्व मर्यादित काल के लिए होता है । तारक तीर्थंकर परमात्मा तीर्थ की स्थापना करते हैं, परंतु वे उस शासन को अपने आयुष्य तक ही संभाल पाते हैं–उनके विरह में उनके द्वारा स्थापित शासन को आचार्य भगवंत ही वहन करते हैं ।

ऋषभदेव प्रभु ने 1000 वर्ष न्यून 1 लाख पूर्व तक अपने द्वारा स्थापित शासन को वहन किया, जबकि उनके द्वारा स्थापित शासन 50 लाख करोड़ सागरोपम तक चला । इतने लंबे समय तक प्रभु शासन को चलाने वाले आचार्य भगवंत ही होते हैं । प्रभु के विरह में प्रभु के यथार्थस्वरूप की पहचान आचार्य भगवंत ही कराते हैं ।

धर्म तत्त्व का यथार्थ स्वरूप आचार्य भगवंत ही समझाते हैं ।

आत्मा का स्वभाव ही आत्मा का धर्म है । आत्मा के स्वभाव को प्राप्त करने में साधनभूत बाह्य धर्म (व्यवहार धर्म) का स्वरूप भी आचार्य भगवंत ही समझाते हैं ।

गुरु तत्त्व की महिमा, गुरु का यथार्थ स्वरूप और गुरु की भक्ति के उपायों को बताने के लिए **महोपाध्याय श्रीमद् यशोविजयजी म.** ने **'गुरुतत्त्वविनिश्चय'** नाम के अद्‌भुत ग्रंथ का सर्जन किया है, उस ग्रंथ की मूल गाथाएं प्राकृत भाषा में हैं और उन गाथाओं पर **पूज्य उपाध्यायजी म.** ने स्वयं संस्कृत भाषा में टीका की रचना की है ।

गुरु तत्त्व की महिमा बताते हुए वे लिखते हैं **'गुरु आज्ञा पालन का उत्कृष्ट फल मोक्ष की प्राप्ति है ।'**

गुरु की कृपा से आठ प्रकार की अणिमा, लघिमा आदि सिद्धियों की प्राप्ति होती है ।

तीर्थंकर परमात्मा के विरह मे दीर्घ काल तक परमात्मा के बताए हुए मोक्षमार्ग को गुरु भगवंत ही बताते हैं ।

एक अपेक्षा से कह सकते हैं कि साक्षात् तीर्थंकर परमात्मा के आलंबन से जितनी आत्माएँ मोक्ष में जाती हैं, उससे भी अधिक आत्माएँ परमात्मा के द्वारा स्थापित तीर्थ के आलंबन से जाती हैं । लंबे समय तक प्रभु के तीर्थ को चलाने वाले आचार्य भगवंत ही होते हैं ।

भूतकाल में हुए तीर्थंकर परमात्माओं के पवित्र चरित्त को पढेंगे तो पता चलेगा कि उनकी आत्मा को भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में निमित्त गुरु भगवंत ही निमित्त हुए हैं ।

ऋषभदेव भगवान को धन्ना सार्थवाह के भव में गुरु भगवंत के आलंबन से ही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई थी ।

तीर्थंकर पार्श्वनाथ भगवान को गुरु भगवंत के उपदेश से ही सद्धर्म सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई थी ।

भगवान महावीर प्रभु को नयसार के भव में गुरु भगवंत से ही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई थी ।

जिस प्रकार दीपक बाहर के अंधकार को दूर करता है, उसी प्रकार अनादि काल से आत्मा में रहे हुए अज्ञान अंधकार को दूर करने का काम गुरु भगवंत ही करते हैं ।

❊ **भूतकाल में हुए प्रदेशी राजा आदि नास्तिकों को भी सद्गुरू का आलंबन मिला तो वे भी इस भव सागर से पार उतर गए ।**

गृहवास का त्याग कर कठोरतम तपश्चर्या करनेवाले 1500 तापसों को गौतम स्वामी जैसे सद्गुरू की प्राप्ति हुई तो उनको भी केवलज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति हो गई ।

इस संसार में दुःखगर्भित और मोहगर्भित वैराग्य को पानेवाले तो बहुत हैं, परंतु ज्ञानगर्भित सच्चे वैराग्य की प्राप्ति तो सद्गुरू के सान्निध्य से ही होती है ।

आगमग्रंथों में भावाचार्य को तीर्थंकर तुल्य कहा गया है ।

गच्छाचार पयन्ना में कहा है–

'तित्थयरसमो सूरि, सम्मं जो जिणमयं पयासेइ ।

जो सद्गुरु तीर्थंकर के मार्ग के अनुसार धर्मदेशना देते हैं उन्हें तीर्थंकर तुल्य कहा गया है ।

जो भावाचार्य हैं उनके नाम, स्थापना और द्रव्य-निक्षेप भी आदरणीय हैं ।

गौतम स्वामी आदि आचार्यों के नाम आदि निक्षेपों से की गई भक्ति भी पाप नाश करने वाली है ।

गुरुतत्त्व की महिमा

अंधे व्यक्ति को आँख मिल जाय तो उसे कितना आनंद होता है । वह व्यक्ति अपने आनंद को शब्दों में अभिव्यक्त नहीं कर पाता है । बस, वही आनंद इस संसार में भ्रमण कर रही आत्मा को सद्गुरु की प्राप्ति के समय होना चाहिए ।

अंधे को आँख मिलती है, तब उसे नए जीवन की प्राप्ति का आनंद होता है, उसका आनंद अवर्णनीय होता है । बस, सद्गुरू की प्राप्ति का भी वही आनंद होना चाहिए । सद्गुरू की प्राप्ति से आत्मा को नया जीवन मिलता है । अभी तक हेय-उपादेय का कोई भान नहीं था, अब सद्गुरू का योग मिला । हेय क्या और उपादेय क्या, उसका सही बोध मिला ।

अहो ! मेरी आत्मा मोह और अज्ञानता की आग में तप रही थी । गुरूदेव ने मुझे उसमें से बाहर निकाल दिया । उनके इस उपकार को मैं जिंदगीभर भूल नहीं सकता ।

अभी तक मैं हिंसा-आदि पापों में लयलीन बना था, हिंसादि पापों से परलोक में होने वाले भयंकर अनर्थों से अनभिज्ञ था । सद्गुरूदेव ने मुझे इन पापों की अनर्थता समझाई । मैं इन पापों से बच गया ।

दुनिया में कोई भी व्यक्ति किसी की भी मदद करता है तो उसमें उसका स्वार्थ हो सकता है, जबकि पूज्य गुरूदेव ने तो निःस्वार्थ भाव से मुझे रत्नत्रयी का दान किया है, उनके इस उपकार का बदला मैं किसी भी भव में चुका नहीं सकता हूँ ।

संसार के सभी संबंधी तो शरीर की संभाल लेते हैं, शरीर के सुख-दुःख में साथ देते हैं जबकि मेरे उपकारी गुरूदेव तो आत्मा के सुख-दुःख की चिंता करनेवाले हैं । उनके उपकार की तुलना नहीं हो सकती है ।

ऐसे परमोपकारी गुरूदेव के उपकार को भूल जाना, यह सबसे बड़ी कृतघ्नता है ।

गुरू के उपकार को रोज-रोज याद करना चाहिए ।

जैसे जीवन जीने हेतु प्रतिपल श्वासोच्छ्वास जरूरी है, उसी

प्रकार संयम जीवन का आस्वाद लेने के लिए उपकारी गुरूदेव के उपकार का सतत् स्मरण करना चाहिए ।

इस लोक के उपकारी माता-पिता के उपकार को भी दुष्प्रतिकार्य कहा जाता है अर्थात् उसका बदला चुकाना अत्यंत कठिन है तो जो गुरू भवोभव के उपकारी हैं उनके उपकार का बदला कैसे चुकाया जा सकता है ।

ठीक ही कहा है–

समकित दायक गुरुतणो, पच्चुवयार न थाय ।
भव कोड़ा कोड़े करी, करता सर्व उपाय ।।

करोड़ों भवों तक भी गुरू की सेवा की जाय तो भी उनके उपकार के ऋण से मुक्त नहीं बन सकते हैं ।

जैसे आकाश का कोई अंत नहीं, उसी प्रकार गुरू के उपकार का भी कोई अंत नहीं है । हमारे संयम जीवन में जो कोई आराधना होती है, उसमें गुरू का ही मुख्य प्रभाव है ।

जरा सोचें, यदि इस भव में सद्गुरू का योग नहीं मिला होता तो हमारी क्या हालत होती ? अतः पूज्य उपकारी गुरूदेव के उपकार को सतत याद करना चाहिए ।

उपकारी के उपकार को भूल जाने में हमें भयंकर नुकसान है, उसमें भी उपकारी गुरूदेव के उपकार को भूल जाना, यह तो भयंकर कृतघ्नता है, इससे आत्मा का भवभ्रमण खूब बढ़ जाता है ।

'उपदेशमाला' में कहा है कि शिष्य गुरू का अनुवर्तक होना चाहिए । जिस प्रकार बछड़ा गाय के पीछे-पीछे चलता है, उसी प्रकार शिष्य को गुरू का अनुसरण करना चाहिए ।

दीक्षा लेने के साथ ही हमने संसार के सारे संबंधों को छोड़ दिया, अब एक मात्र संबंध जोड़ा गुरू के साथ ! गुरू के साथ जोड़ा यह संबंध स्थायी होना चाहिए ।

अनादिकाल से हम अपनी इच्छानुसार ही चले हैं । अपनी इच्छा को मुख्य बनाना, यही सबसे बड़ा अपराध है और अपनी इच्छा को गौण बनाकर गुरू की इच्छा को प्रधानता देना, यही सबसे बड़ा धर्म है ।

स्वेच्छानुसारिता यह सबसे बड़ा दुर्गुण है । आज यह दुर्गुण खूब व्यापक हो गया है । एक छोटे से बालक को भी पराधीनता पसंद नहीं है, वह भी अपनी इच्छानुसार प्रवृत्ति करना चाहता है । संयम-जीवन के स्वीकार के बाद तो कम-से-कम यह वृत्ति समाप्त होनी चाहिए । तभी संयम जीवन सार्थक हो सकता है, अन्यथा इस जीवन द्वारा भी बहुत कुछ खोने का ही है ।

अपनी इच्छानुसार गुरूदेव को आचरण कराने में अपनी हीनता ही है । अपनी इच्छाओं को प्रधानता देने से मान कषाय का ही पोषण होता है, इससे अपना भवभ्रमण बढ़ता है ।

अपना आयुष्य बहुत छोटा है । कोई पल्योपम जितने वर्ष जीने का नहीं है, तो इस छोटीसी जिंदगी में अपनी इच्छाओं का त्याग कर दें तो इसमें कौनसा बड़ा नुकसान हो जानेवाला है ।

शास्त्र में तो गुरूकुलवास को ही ब्रह्मचर्य कहा है ।

शिष्य की योग्यता देखकर ही गुरू आज्ञा फरमाते हैं, अतः गुरु की आज्ञा **'शिरसा वंद्य'** कहकर स्वीकार करनी चाहिए ।

समझदार शिष्य को तो गुरू को आज्ञा करने की भी जरूरत नहीं रहती है, वह ईशारे में ही समझ जाता है ।

गुरू की आज्ञा के पालन से भी गुरू की इच्छानुसार वर्तन करना कठिन है ।

समर्पित शिष्य गुरु की आज्ञा के ही नहीं, इच्छा के भी अधीन होता है । चाहे जैसे प्रलोभन आएँ तो भी वह कभी विचलित नहीं होता है ।

गुरू की इच्छा के अनुसार वर्तन करनेवाले शिष्य का भी जीवन धन्य बन जाता है, भविष्य में उसमें भी गुरुत्व भाव पैदा होता है और जीवन के अंतिम समय में समाधिभाव प्राप्तकर वह सद्‌गति प्राप्त करता है ।

परंतु जो शिष्य गुरू की इच्छा को गौणकर स्वच्छंद जीवन जीता है, उसे बाद में पछताना ही पड़ता है, ऐसा शिष्य मृत्युवेला में असमाधि प्राप्त कर अपनी आत्मा की भावी दुर्गति को ही आमंत्रण देता है ।

सद्गुरू के स्वरूप की पहिचान कराते हुए **'सिंदुरप्रकर'** ग्रंथ में कहा है–

अवद्यमुक्ते पथि यः प्रवर्तते, प्रवर्तयत्यन्यजनं च निःस्पृहः ।
स एव सेव्यः स्वहितैषिणा गुरूः स्वयं तरंस्तारयितुं क्षमः परम् ।।

सद्गुरू, जो भवसागर से पार उतारने में नाव समान है, उनका आलंबन लिये बिना कोई भी आत्मा भवसागर से पार नहीं उतर पाती है ।

सद्गुरू ही हमारे मिथ्याबोध को दूर करते हैं और जिनागम के सत्य पदार्थों का बोध कराते हैं । सद्गति और दुर्गति के मार्ग को समझानेवाले सद्गुरू ही हैं । वे गुरु ही पुण्य और पाप के स्वरूप को यथार्थरूप में समझाते हैं । अपने कर्तव्य और अकर्तव्य का भेदज्ञान भी सद्गुरू ही कराते हैं ।

ऐसे सद्गुरू की प्राप्ति महान् पुण्योदय के बिना नहीं होती है ।

सद्गुरू की प्राप्ति के अभाव में अनेक आत्माएँ संसार में जहाँ-तहाँ भटक रही हैं ।

माता-पिता, भाई-बहिन, मित्र-परिवार, पुत्र-पुत्री आदि भी आत्मा को दुर्गति के गर्त में गिरने से बचा नहीं पाते हैं । आत्मा को दुर्गति के गर्त में से बचानेवाले एक मात्र सद्गुरू ही हैं, अतः उनकी उपासना खूब सद्भाव पूर्वक करनी चाहिए ।

ध्यान की साधना करें, दीर्घ तपश्चर्या करें, इन्द्रियों का दमन करें, शास्त्रों का स्वाध्याय करें परंतु यह सब कुछ करते हुए भी जो सद्गुरू की आज्ञा का पालन नहीं करता है, वह आत्मा अपने भवभ्रमण का अंत नहीं ला पाती है ।

'गुरु' शब्द में 'गु' अक्षर अन्धकार का वाचक है और 'रु' उच्छेदक का वाचक है । इस प्रकार 'गुरु' शब्द का अर्थ हुआ–'जो आत्मा के अज्ञान-अंधकार को दूर करते हैं ।

अज्ञान अन्धकार है और गुरू दीपक समान है ।

दीपक के आगमन के साथ ही जिस प्रकार अन्धकार पलायन कर जाता है, उसी प्रकार सद्गुरू के योग से आत्मा में विद्यमान अज्ञान-अन्धकार भी दूर होने लगता है ।

'तत्त्वार्थ सूत्र' में सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के दो हेतु बतलाये हैं । (1) निसर्ग और (2) अधिगम ।

'अधिगम' जन्य सम्यग्दर्शन की प्राप्ति सद्गुरू के योग से ही होती है ।

सद्गुरू Torch Light के समान है, जो भीषण अन्धकार के बीच हमें सन्मार्ग दिखाते हैं । **'देव-गुरु और धर्म'** रुप तत्त्वत्रयी में गुरू तत्त्व मध्य में है ।

गुरु-भक्ति

जिनशासन की अद्भुत प्रभावना करते हुए **जगद्गुरु आचार्य भगवंत हीरसूरीश्वरजी म.सा.** गंधार की ओर पधार रहे थे । उस नगर में रामदास नाम का श्रावक रहता था । उसके दिल में पूज्य गुरूदेवश्री के प्रति अपूर्व आस्था और भक्ति थी ।

एक चातक पक्षी की तरह वह गुरूदेव के गंधार आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था और एक शुभ दिन एक व्यक्ति ने आकर रामदास सेठ को समाचार दिए कि गंधार की धरती को पावन करने के लिए पूज्य गुरूदेव अमुक तिथि को गंधार पधार रहे है ।

पूज्य गुरूदेवश्री के आगमन के समाचार से प्रसन्न हुए रामदास सेठ ने उसी समय अपने पास में ही रहा चाबियों का गुच्छा उस व्यक्ति के सामने रखा और उसे कहा, **'इसमें से जो चाबी पसंद पड़े वह ले लो और उस चाबी से जो माल मिलेगा, उसके मालिक तुम ।'**

चाबियों के उस गुच्छे में सोने, चांदी व रत्नों के आभूषणों के भंडार की भी चाबी थी । दुर्भाग्य से उस अल्पबुद्धिवाले ने उस गुच्छे में रही सबसे बड़ी चाबी उठा ली ।

वह चाबी उस गोदाम की थी, जिसमें सामुद्रिक वाहन व्यवहार के लिए रस्सियाँ भरी हुई थीं ।

पूज्य गुरुदेवश्री के आगमन की बधाई मात्र में इतनी संपत्ति की उदारता दिखानेवाले रामदास ने पूज्य गुरुदेवश्री का कैसा भव्य स्वागत किया होगा, उसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं ।

41. संयम जीवन में वैराग्य वृद्धि के प्रबल निमित्त

1) स्वाध्याय :– वैराग्य पोषक ग्रंथों का स्वाध्याय करने से, उनका पुनरावर्तन करने से उनको पढने से उनका विवेचन पढने से अपना वैराग्य पुष्ट होता है ।

वैराग्य को पुष्ट करने के लिए पूर्वाचार्यों ने अनेक ग्रंथों का निर्माण किया है ।

उदा. 1) प्रशमरति 2) अध्यात्म कल्पद्रम 3) वैराग्य शतक 4) इन्द्रिय पराजय शतक 5) संबोध सित्तरी 6) शांत सुधारस ।

2) सुविहित मुनियों का समागम :– त्यागी-तपस्वी-संयमी महात्माओं का सत्संग करने से, उनका प्रवचन सुनने से भी अपना वैराग्य भाव पुष्ट होना है ।

भले ही वैराग्य से दीक्षा ली है, परंतु उस वैराग्य भाव को टिकाने के लिए गुरू मुख से जिन-वचनों का श्रवण खूब जरुरी है । शास्त्र पढने से जो वैराग्य नहीं होता हैं, वह वैराग्य गुरू-मुख से श्रवण करने पर होता है ।

3) शिथिलता त्याग :– संयम का राग घटता है, तब जीवन में शिथिलता का प्रवेश होता है, परिणाम स्वरुप अपना वैराग्य भाव भी कमजोर होता है ।

4) संबंधों का विस्मरण :– सांसारिक संबंधों को भूलने से अपना वैराग्य पुष्ट होता है । संसार के संबंध नाशवंत है । उन संबंधों में मोहित होने से राग भाव पुष्ट होता है ।

दीक्षा स्वीकार के बाद सांसारिक संबंधों को भूल जाना चाहिए ।

दीक्षा के बाद सांसारिक संबंध याद आते हो या उन संबंधियों को देख मन खुश होता हो तो यह वैराग्य भाव की कमजोरी मानी जाती है ।

सांसारिक संबंधियों को देखकर भी मन में आकर्षण पैदा न हो तो वैराग्य दृढ समझना चाहिए ।

5) मृत्यु का चिंतन :– मौत का पुनः पुनः स्मरण करने से, मृत्यु का चिंतन करने से भी अपना वैराग्य भाव पुष्ट बनता है ।

मृत्यु से संसार के सारे संबंधों का अंत आ जाता है, अतः उन संबंधों में मुग्ध बनने जैसा नहीं है ।

7) स्वादजय :– भोजन के स्वादिष्ट पदार्थ भी अपने वैराग्य भाव को कमजोर बना देते हैं, अतः जिसे अपना वैराग्य भाव बढाना हो और राग भाव को घटाना हो तो भोजन में रसप्रद भोजन का त्याग करना चाहिए । भोजन के रस ने तो कई त्यागी व तपस्वी महात्माओं का भी अधः पतन करा दिया है ।

शक्य हो तो स्वादिष्ट व रसप्रद फल, मिठाई, नमकीन, सुखे मेवे आदि का त्याग करना चाहिए ।

8) गुरु समर्पण :– गुरु के प्रति समर्पण भाव भी अपने वैराग्य भाव को पुष्ट करता है ।

भवोदधि तारक गुरुदेव अपनी आत्मा का रक्षण करते है ।

42. श्रमणहित शिक्षा सूत्र

1. सहिष्णु बनो !

तन में व्याधि भले हो
परन्तु मन समाधि में हो ।

जब तक आत्मा के साथ अघाति कर्म लगे हुए है, तब तक असाता की पूर्ण आंशका है ।

सिर्फ तीर्थंकर भगवंतों को केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद अशाता का उदय नहीं होता हैं, उन्हें केवलज्ञान बाद साता का ही उदय होता हैं, परंतु केवलज्ञान बाद साता का ही उदय होता हैं, परंतु सामान्य केवली को तो शाता-अशाता दोनों का उदय हो सकता है ।

केवली को भी असाता का उदय हो सकता है तो हम जैसे को असाता का उदय हो उसमें आश्चर्य की बात नहीं है ।

शरीर में असाता का उदय आ जाय तो आकुल-व्याकुल नहीं बनता है ।

मन में आर्तध्यान नहीं लाना है । बल्कि मन को समाधिभाव में जोडकर व्याधि को भी कर्म निर्जरा का साधन बनाता है ।

तन में व्याधि तो परीक्षा की घडी है ।

तन (रथ) भले बीमार हो, उसका सारथी (आत्मा) तो आनंद में ही रहनी चाहिए । तन में व्याधि तो `रोग परीषह है' उसे सहन करने में **`सहिष्णु'** बनना है ।

सनत्कुमार चक्रवर्ती ने दीक्षा लेकर 700 वर्षों तक इस परीषह को सहन किया है, तो हमारी व्याधि तो कितने वर्षों की है ।

कदाचित् रोग सहन नहीं होता हो और उसकी चिकित्सा करनी पडे तो भी मन में उसका दुःख होना चाहिए ।

–तन में व्याधि के समय गजसुकुमाल मुनि को याद करें ।

–धनश्री के पति धन मुनि को याद करे ! पत्नी ने उन्हें जीते जी सुलगा दिया तो भी वे हिले नहीं ।

–साहस व सहिष्णुता का घनिष्ट संबंध है । जो सहिष्णु होता है, वही बडा साहस कर सकता है ।

2. अभिमान से बचें

जो पूर्ण हो, वह अभिमान का अधिकारी है । जिनके ऊपर कोई न हो, जो सबसे ऊपर हो, वे ही अभिमान के अधिकारी है !

हमारे पास क्या हैं ? जिसका हम अभिमान करे !

जो कुछ मिला हैं, पुण्य को आभारी है । पुण्य से प्राप्त सामग्री अल्पकालीन है, अतः अभिमान किस बात का ?

अभिमान तो पतन की सीढी है ।

श्रमण जीवन में अभिमान किस बात का ?

साधु तो जो था, वह भी छोडकर आया है ।

नम्रता यह तो साधु का मुख्य लक्षण है । जो साधु पुण्योदय से प्राप्त बाह्य ऋद्धि-सिद्धि या लब्धियों का अभिमान करता हैं, वह उसके पतन का ही कारण बनती है ।

पुण्य-कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त उन लब्धियों का क्या अभिमान करना ? ये तो आज है और कल नहीं है ।

3. दूसरों की भूलों को भूल जाना है ।

भूलना भी बहुत बडा गुण है । दूसरों की भूलों को याद रखना, बहुत बडा दुर्गुण है तो दूसरों की भूलों को भूल जाना बहुत बडा दुर्गुण है ।

सामनेवाले ने माफी मांग ली हो अथवा उसे माफ कर दिया हो, फिर उस Case को पुनः जीवित रखना मुर्खता ही है ।

माफ कर देने के बाद भी उन्हीं भूलों को पुनः याद कराता है तो यह बहुत बडा अपराध हो जाता है ।

4. सद्विचारों के साथ आचार संपन्न बनें

जीवन में सिर्फ ऊँचे विचार होना ही पर्याप्त नहीं है । ऊँचे विचारों के साथ उच्च आचार भी जरुरी है ।

जो लोग सिर्फ अच्छी बातें करते हैं, परंतु आचार का ठिकाना न हो तो वह वक्ता नहीं किंतु **'बकता'** कहलाता है ।

याद रखना दुनिया सिर्फ विचारों से नहीं, आपके आचारों से प्रभावित होती है ।

आचार बिना का विचार तो पंगु है, जो देख सकता है, किंतु चलता नहीं है ।

ठीक ही कहा है, 'आचारः प्रथमो धर्मः । आचार तो पहला धर्म है ।

अच्छा विचार स्वयं को लाभ करता है, जबकि अच्छा आचार सामने वाले को भी प्रभावित किए बिना नहीं रहता है ।

साधु के बाह्य आचार पालन को देखकर ही बाल जीव प्रतिबोध पा जाते है ।

5. क्रोध आग है, क्षमा पानी है

पानी से ही आग बुझती है । क्रोध की आग को शांत करने का उपाय क्रोध नहीं बल्कि क्षमा ही है ।

आग से आग कभी शांत नहीं होती है, उसे शांत करने के लिए तो पानी ही चाहिए ।

'कसाया अग्गिणो वुत्ता' कषायों को आग कहा गया है ।

सामनेवाला आवेश में हो तो उसका जवाब आवेश से नहीं देना चाहिए ।

सामनेवाला आग उगलता हो तो हमें पानी बन जाना चाहिए ।

आग जहां उठती है, वह पहले उस घर को जलाती है ।

क्रोध जहां पैदा होता हैं, पहले उसी को नुकसान पहुँचाता है, फिर दूसरों को भी नुकसान पहुँचाता है ।

क्रोध का जवाब कभी क्रोध से मत दो !

क्रोध का जवाब क्रोध से देना, यह तो आग में घी उंडेलने जैसी बात है ।

आग में घी डालने से आग शांत नहीं होती है, बल्कि और अधिक भडकती है । उसी प्रकार क्रोध का जवाब क्रोध से देने से क्रोध की आग शांत नहीं होती हैं, बल्कि ज्यादा भडकती है ।

अतः अपना अपराध हो या न हो, सामनेवाला आवेश में आकर हमें कुछ सुना दे तो भी उसका जवाब क्रोध से तो कभी नहीं देना चाहिए ।

सामनेवाले को क्षमा कर देने से क्रोध की आग धीरे धीरे शांत हो जाती है ।

6. सुखशील न बनें !

प्राप्त दुःख को छोडना और दुःख को गले लगाना, यही तो संयम जीवन का सार है ।

संयम स्वीकार करते समय सारी सुविधाओं को छोडा था ।

कहीं भी जाने के लिए वाहन का त्याग किया । सोने के लिए गद्दी-तकियों का त्याग किया ।

खाने-पीने के लिए अभक्ष्य भक्षण का त्याग किया ।

मोज मस्ती की सारी प्रवृत्तियाँ छोड दी तो अब संयम जीवन के स्वीकार के बाद सुखशीलता क्यों ?

`कपडे स्वच्छ व अच्छे चाहिए ।

गोचरी व्यवस्थित चाहिए !

आसन की जगह अनुकूल चाहिए ।' ऐसा क्यों ?

सच मायने में तो अनुकूलता और साधु-जीवन का मैल ही नहीं है ।

अनुकूलताओं का सहर्ष त्याग और प्रतिकुलताओं का सहर्ष स्वीकार, इसी का नाम तो संयम जीवन है ।

5-15 वर्षों की अनुकूलता सुविधाओं के लिए देवों को भी दुर्लभ ऐसे संयम जीवन को हार नहीं जाना है ।

जो भी संयोग होंगे, उसे मैं सहर्ष स्वीकार करुंगा । यह मनोवृत्ति आ जाय तो स्वर्ग यही खडा हो जाता है ।

7. धैर्य रखो !

किसी भी कार्य में जल्दबाजी न करें ! ठीक ही कहा है– **'उतावला सो बावला ।'** जो जल्दबाजी करना है, उसे बाद में पछताना ही पडता है ।

ड्राइवर की थोडीसी उतावल अनेक के लिए मौत का कारण बन जाती है ।

–कोई भी कार्य सही ढंग से करने की कोशिश करे ।

सुबह गाथा याद की और शाम को भूल गए तो भी हताश न बने । पुनः प्रयत्न करे । **'हताश व निराश न हो जाय !'**

'मुझे तो कुछ भी याद नहीं रहता है ।' इस प्रकार निराश होने से काम नहीं चलेगा ।

थोडा धैर्य रखे । आज याद नहीं हुआ तो कोई बात नहीं, कल पुनः मेहनत करे, अवश्य याद होगा ।

व्यापारी को भी अपना व्यापार जमाने में वर्षों लग जाते है ।

जीवन में सफलता हासिल करने के लिए धैर्यवान होना भी खूब जरुरी है ।

जो धैर्य खो देता है, उतावला हो जाता हैं, वह सफलता हासिल नहीं कर पाता है ।

8. निराश (हताश) मत बनों !

हताशा, यह मन की सब से बडी बीमारी है । हताशा व्यक्ति को निराश बना देती हैं–उत्साह भंग कर देती है ।

जीवन में निराशा आ जाय तो महापुरुषों के जीवन चरित्र पढकर मन को उत्साह से भर दो–निराश व्यक्ति को हर दिन भारी लगता है- उसकी रातें बेचैनी में ही व्यतीत होती है ।

मिट्टी का घडा कितना सहन करता है ? कुंभार के थपेडें और आग की गर्मी को सहनकर ही वह मजबूत बनता है ।

नियमित एकासना, पर्व तिथि को आयंबिल व पक्खी को उपवास चालू किया और सफलता नहीं मिली, तो भी हताश न बने, मन को निराशा से मत भर दो ।

आज नहीं तो कल सफलता अवश्य मिलेगी, इस प्रकार आशावादी बनें, परंतु हताश या निराश न बने ।

9. संयम के हर कार्य में उत्साह रखों !

संयम जीवन की प्रत्येक आराधना-साधना उत्साहपूर्वक करनी चाहिए ।

उत्साह से सत्कार्य करने से शुभ का अनुबंध पडता है और रोते रोते करने से अशुभ का ही अनुबंध गिरता है ।

मन नाखुश हो तो छोटा काम भी भारी लगता है और उत्साह हो तो बडा काम भी हल्का लगता है ।

इस संसार में अनंत भवों में जो प्राप्त नहीं हुआ है, वह इस भव में प्राप्त हुआ है ।

–सद्गुरू का समागम अत्यंत ही दुर्लभ वस्तु है ।

प्रभु शासन के अनुष्ठान खूब दुर्लभ है । उन वस्तुओं की प्राप्ति का हृदय में आनंद होना चाहिए और जैन शासन की प्रत्येक क्रिया खूब उत्साह से करनी चाहिए ।

उपाश्रय में से काजा निकालना हो या गुरु भगवंत या ग्लान मुनि का काप निकालना हो, गोचरी जाना हो या पानी लाना हो, संयम की किसी भी क्रिया को सामान्य न समझे ! संयम जीवन की हर क्रिया में केवलज्ञान देने की ताकत रही हुई है ।

बशर्त है, उन्हें खूब उत्साह-उल्लासपूर्वक करें । शुभ भी क्रिया रोते रोते करने से उसका फल नगण्य हो जाता है ।

10. निंदा की प्रतिक्रिया न करें

कोई अपनी निंदा भी करता हो तो उसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं करनी चाहिए क्योंकि आज जो अपनी स्तुति कर रहा हैं, कल वह अपनी निंदा भी कर सकता है और आज जो अपनी निंदा कर रहा है, कल वह अपनी प्रशंसा भी कर सकता है ।

मुनि को अपनी निंदा व स्तुति में समभाव ही रखना है । न तो अपनी स्तुति से खुश होना हैं और न ही अपनी निंदा से आकुल-व्याकुल होना है ।

निंदक मत बनो, परंतु अपनी कोई निंदा करता हो तो उन दोषों पर गहराई से विचार करे ! अपने में दोष हो तो उन्हें दूर करने का प्रयास करे ।

ईंट का जवाब पत्थर से देना, यह कोई साधुता नहीं है ।

यदि कोई अपनी निंदा करता हो तो सोचे कि यह तो मेरे पाप कर्म के मैल को धो रहा है ।

सच्चे साधु का लक्षण ही है–

'निंदा स्तुति श्रवण सुनी ने, हर्ष शोक नवि आणे ।'

अपनी प्रशंसा सुनकर खुश नहीं होना चाहिये तो अपनी निंदा सुनकर नाराज भी नहीं होना चाहिए ।

11. अपने दोषों को कभी छिपाना नहीं

दोषों का अपना विचित्र स्वभाव है कि हम ज्यों ज्यों उन्हें प्रकट करते है, त्यों-त्यों वे नष्ट होने जाते हैं और ज्यों-ज्यों उन्हें छिपाते हैं, त्यों-त्यों वे पुष्ट होते जाते है ।

अपनी भूलों को सुधारने का एक मात्र उपाय है–'उन्हें अपने गुरु के समक्ष खुले दिल से प्रकट कर देना ।

अनादि के कुसंस्कारों के फलस्वरुप मन की यह कमजोरी होती है कि वह अपने दोषों को छिपाने का भरसक प्रयत्न करता है और अपने गुणों को प्रकाश में लाने का झूठा प्रयास करता है ।

आग की लपटों को छिपाने की कितनी ही कोशिश की जाय, वे प्रकट हुए बिना नहीं रहती हैं उसी प्रकार दोषों को छिपाने के लिए चाहे जितना प्रयास किया जाय वे प्रकट हुए बिना रहते नहीं है ।

दोषों की सजा में से बचने का एक ही सरल व श्रेष्ठ उपाय है कि ये दोष स्वयं को भयंकर लगने चाहिए और गुरु समक्ष प्रकट करने में किसी भी प्रकार की हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए ।

दोष तो कर्पूर की तरह है । कर्पूर को खुला रखने से वह हवा में उड जाता है, उसी प्रकार दोषों को प्रकट करने से वे दोष भी भाग जाते है ।

दोषों को प्रकट करने में बालक की तरह एकदम सरल बन जाय ।

12. निरर्थक न बोले

जीवन में निरर्थक नहीं बोलना चाहिए । जरुरत हो उतना ही बोलना चाहिए ।

जो निष्कारण बोल-बोल करता हैं, उसके वचन की कोई कींमत नहीं रहती है ।

निरर्थक बोलनेवाले वाचाल कहलाते है । वे स्वयं हंसी पात्र बनते

है । जो अनावश्यक व बिन जरुरी बोलता रहता हैं, उसे बकवास कहा जाता है ।

उसके वे शब्द निरर्थक हो जाते हैं, उन शब्दों का कोई मूल्य नहीं रहता है ।

13. क्रोध क्षणजीवी परंतु नुकसान चिरंजीवी

क्रोध की क्षणें तो मर्यादित होती हैं, परंतु उससे होनेवाला नुकसान दीर्घकालीन होता हैं, उस नुकसान की भरपाई करना कठिन हो जाता है ।

जो क्रोध के अल्प क्षणों को रोक नहीं पाता है, वह दीर्घकाल तो उसकी सजा का अनुभव करता है ।

हमारे ऊपर क्रोध करनेवाला तो नादानी कर रहा है, परंतु हम उस क्रोधी पर क्रोध बडी नादानी कर रहे है ।

–क्रोध की क्षणों को रोक दे तो हम बडे भारी नुकसान से बच सकते है ।

क्रोध से शारीरिक मानसिक, धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टि से एकांत नुकसान ही है ।

क्रोध से बचने में फायदा ही फायदा है, नुकसान नाम मात्र का भी नहीं है ।

क्षमा करने से क्षमा मांगनेवाला महान होता है । क्षमा करना सरल है, क्षमा मांगना कठिन है ।

क्षमा मांगना कठिन हैं, क्योंकि उसमें हमारे अभिमान पर चोट लगती है ।

14. किसी से ईर्ष्या मत करो

ईर्ष्या, घृणा, तिरस्कार तथा द्वेष आदि नकारात्मक भाव हैं, इन भावों से दूसरों को नुकसान हो या न हो स्वयं को तो अवश्य नुकसान होता है ।

ईर्ष्या की आग बहुत खतरनाक है । स्त्री जीवन में यह दोष सहज देखने का मिलता है ।

किसी के उत्कर्ष को सहन नहीं करना, इसी का नाम ईर्ष्या है ।

15. स्वार्थी मत बने !

मानव जीवन की महानता तो परोपकार के कार्य करने में है ।

इस जीवन को पाकर शक्य हो उतना परोपकार के कार्य करने चाहिए ।

परोपकार न कर सको तो कम से कम स्वार्थी तो नहीं बनना चाहिए ।

स्वार्थी व्यक्ति हर प्रसंग में अपना ही विचार करता है ।

'मुझे क्या फायदा है ?' यही स्वार्थी का लक्ष्य बिंदु होता है ।

16. भाषा में शिष्टता न छोडे

किसी को सुधारना हो तो प्रेम व शिष्ट भाषा से ही सुधारा जा सकता है ।

किसी को डांटकर या कठोर भाषा से किसी को सुधारा नहीं जा सकता है ।

प्रेम की भाषा को पशु भी समझ जाता है, अतः किसी को कुछ भी कहना हो तो प्रेमभरे शब्दों से कहना ।

17. वैराग्य की ज्योत जीवंत रखे

वैराग्य तो संयम जीवन का प्राण है । प्राण बिना के देह की क्या कीमत हैं ?

वैराग्य बिना का साधु तो खोखला है ।

संयमी के कदम-कदम में वैराग्य की छाया दिखाई देनी चाहिए ।

18. आत्म प्रशंसा न करे

आत्मा के सच्चे साधक में अध्यात्म की भूख होती है, परंतु आत्म प्रशंसा की भूख नहीं होती है ।

पर निंदा व आत्म-प्रशंसा दोनों साथ साथ चलते है ।

जहां आत्म-प्रशंसा होगी, वहां परनिंदा का वृक्ष हरा भरा होगा ।

परनिंदा व आत्म प्रशंसा से नीच गोत्र कर्म का बंध होता है ।

19. दैनिक सामाचारी में प्रमाद न करें

1. प्रतिलेखना :– सुबह शाम विधिपूर्वक वस्त्र आदि की प्रतिलेखना करनी चाहिये ।

2. प्रमार्जना :– प्रतिलेखना बाद बस्ती की विधिपूर्वक प्रमार्जना अर्थात काजा लेना चाहिये ।

3. भिक्षाचर्या :– संघाटक के साथ 42 दोषों से रहित भिक्षा ग्रहण करनी चाहिये ।

4. ईर्यासमिति :– गोचरी वहोरकर बस्ती में आकर ईरियावहिय करनी चाहिये ।

5. आलोचना चाहिये :– गोचरी संबंधी लगे दोषों की आलोचना करनी चाहिये ।

6. आहारग्रहण :– 5 दोष टालते हुए गोचरी वापरना चाहिये ।

7. पात्र प्रक्षालन :– वापरने के बाद विधिपूर्वक पात्र प्रक्षालन करना चाहिये ।

8. विहारभूमि गमन :– स्थंडिल हेतु निर्दोषभूमि में जाना चाहिये ।

9. स्थंडिल पडिलेहण (मांडला) सूर्यास्त पूर्व अवग्रह के अंदर-उपाश्रय के पास लघुनीति हेतु भूमि प्रमार्जन करना चाहिये ।

10. प्रतिक्रमण :– दिन-रात में हुए अतिचार दोषों की शुद्धि हेतु सुबह-शाम प्रतिक्रमण करना चाहिये ।

20. अपनी भूल का सहर्ष स्वीकार करे !

मानव मात्र भूल का पात्र है ।

भूल किससे नहीं होती हैं ? जो वीतराग है, वे कभी भूल नहीं करते है ।

अपने जीवन में भूल हो जाय तो उसका तुरंत ही स्वीकार कर लेना चाहिए ।

भूल को छिपाने से वह भूल बडी होती जाती है ।

21. प्रमाद से बचते रहें

साधु के गुणस्थानक का नाम ही प्रमत्त गुणस्थानक है, परंतु इसका अर्थ यह नहीं हैं कि उसे प्रमादी रहना है ।

वास्तव में मिथ्यात्व और अविरति के द्वार तो साधु के लिए बंद हो चुके होते है । प्रमाद, कषाय और योग के द्वार खुले होते है ।

साधु को प्रयत्न व पुरुषार्थ द्वारा उन द्वारों को भी बंद करने के लिए पुरुषार्थ करना है अतः श्रमण जीवन में थोडा भी प्रमाद करना उचित नहीं है ।

43. साधु समागम से लाभ

1) समाधि प्राप्ति :– साधु का दर्शन भी जीवात्मा को समाधि प्रदान करता है ।

❖ बहुरुपिये ने साधु का वेष धारण किया, जिसे देखकर उदायन मंत्री को समाधि मृत्यु की प्राप्ति हुई ।

सेनापति ने बहुरुपिये को कहा, `मंत्रीश्वर की आंखें हमेशा के लिए बंद हो गई है । अब तुम्हारा काम पूरा हो गया ।

बहुरुपिये ने कहा, `मंत्रीश्वर की आंखे बंद हो गई है, परंतु मेरी आंखें हमेशा के लिए खुल गई है ।

साधु के वेष मात्र से बहुरुपिये के अन्तश्चक्षु खुल गए और वे हमेशा के लिए सच्चे साधु बन गए ।

2) ज्ञान प्राप्ति :– साधु के संग से सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होती है ।

❖ डोरी पर नृत्य करते हुए इलायची कुमार ने दूर से ही साधु के दर्शन किए और उसकी विचार धारा बदल गई ।

`धन्य हो इन महात्मा को ! पद्मिनी जैसी स्त्री सामने खडी है और वे उसे अपनी आंखों से भी नहीं देख रहे है और धिक्कार हो मेरी आत्मा को ! एक नटिनी के रुप में पागल बनकर मैं अपने पिता व कुल की इज्जत को भी भूल गया हूँ !'

भावना में आगे बढते हुए इलायची कुमार को वही पर केवलज्ञान हो गया ।

3) सद्गति दाता :– मुनि का संग आत्मा को सद्गति प्रदान करता है ।

❖ बलदेव मुनि जंगल में साधना कर रहे थे । एक हिरण उनके संग में आया । वह मुनि को भिक्षा दिलाने में सहायक बनने लगा ।

एक बार एक सार्थवाह बलदेव मुनि को भिक्षा दान कर रहा था

और यह हिरण यह दृश्य देख मुनिवर के चारित्र और सार्थवाह के दान धर्म की भूरि भूरि अनुमोदना करने लगा ।

मुनि के संयम की अनुमोदना ने हिरण को भी 5 वें ब्रह्मदेव का देव बना दिया ।

4) समृद्धि दाता :– शालिभद्र ने अपने पूर्वभव में मुनि को निष्काम भाव से खीर का दान दिया था, जिसके फलस्वरुप उन्हें उच्च कोटि की भौतिक सुख-समृद्धि प्राप्त हुई और भविष्य में आत्मा की शाश्वत लक्ष्मी प्राप्त होगी ।

5) अपूर्व बल प्राप्ति :– सुबाहुमुनि ने 500 साधुओं की वैयावच्च की जिसके फलस्वरुप अगले भव में उन्हें अतुल बल मिला वे बाहुबली बने ।

6) केवलज्ञान प्राप्ति :– साधु की प्रतिलेखना की पवित्र क्रिया को देखते हुए वल्कलचिरि को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी ।

7) तीर्थंकर पद प्राप्ति :– प्रभु के रोग निवारण हेतु रेवती श्राविका ने सिंह अणगार को भिक्षा में कोलापाक वहोराया, जिसके फलस्वरुप उसने तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जित किया । भविष्य में वह तीर्थंकर बनकर मोक्ष में जाएगी ।

श्रावक का मनोरथ :– पू. हरिभद्रसूरि म. ने ठीक कहा है– **'सर्वविरतिलालसः खलु देशनिरति-परिणामः' ।**

'देशवितिधर श्रावक के दिल में सर्वविरति को पाने की तीव्र अभिलाषा होती है ।'

जिसके दिल में साधु बनने की भावना नहीं, वह प्रभु शासन का श्रावक नहीं !

18 देश के अधिपति सम्राट् कुमारपाल महाराजा भी प्रभु से प्रार्थना करते थे ।

तव शासनरुप भिक्षुत्वं देहि मे परमेश्वर !

हे परमात्मा !

आपके शासन की भागवती दीक्षा मुझे प्राप्त हो ।

वर्तमान में जैन शासन में मांगने योग्य एक ही पद है-साधु पद । आचार्य व उपाध्याय पद मांगने की वस्तु नहीं है ।

शिष्य में योग्यता-पात्रता पैदा होती है, तब गुरु स्वयं अपने शिष्य को आचार्य व उपाध्याय पद पर प्रतिष्ठित करते है ।

साधु की आशातना घातक है :–

साधु पद की आराधना आत्म-उत्थान का कारण है तो साधु या साधुपद की विराधना-आशातना भयंकर पतन का कारण है ।

श्रीपाल महाराजा के जीवन में जो भयंकर आपदाएं आई उसका मूल गत भव साधु की निंदा आशातना ही है ।

भीमसेन राजा के जीवन में जो भयंकर संकट आए, उसका मूल भी पूर्वभव में साधु की आशातना ही है ।

साधुपद बिना तीर्थ नहीं :– तारक तीर्थंकर परमात्मा भी जब शासन की स्थापना करते हैं, तब प्रथम साधु पद ही प्रदान करते है ।

साधु पद से शासन का प्रारंभ है और साधु पद के विच्छद से शासन का विच्छेद है ।

पांचवे आरे के अंत में जब तक एक भी साधु रहेगा तब तक प्रभु का शासन रहेगा और जब एक भी साधु नहीं रहेगा तो शासन का भी विच्छेद हो जाएगा ।

साधु वंदन से तीन लाभ :– 18000 साधुओं को भावपूर्वक वंदना का फलस्वरुप कृष्ण महाराजा को तीर्थंकर नाम कर्म का बंध, क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति और चार नरक के क्षय का महान लाभ हुआ ।

संयम जीवन से एकासने के अनेक लाभ

1) प्रभु की आज्ञा का पालन होता है । **'एगभत्तं च भोयणं'**–यह प्रभु की आज्ञा है ।

2) निर्दोष भिक्षा सुलभ होती है । सुबह-शाम की गोचरी में दोषों की संभावना ज्यादा होती है ।

3) आरोग्य अनुकूल रहता है ।

4) चाय आदि के व्यसनों से मुक्ति मिलती है ।

संयमी-संसारी की भेद रेखा

1) संसारी जीव के केन्द्र में देहदृष्टि होती हैं, वह सतत देह के सुख-दुःख की चिंता करता है ।

संयमी जीव के केन्द्र में आत्म दृष्टि होती है, वह सतत आत्मा के हित-अहित की चिंता करता है ।

2) संसारी के जीवन का उद्देश्य धन प्राप्ति है,
ज्यों ज्यों धन बढता है, त्यों त्यों खुश होता है ।
संयमी के जीवन का उद्देश्य गुण प्राप्ति है,
वह गुणों की वृद्धि से खुश होता है ।

3) संसारी देह की पुष्टि के लिए आहार लेता है ।

संयमी देह को टिकाने के लिए और देह से काम निकालने के लिए आहार लेता है ।

4) संसारी आरोग्य प्राप्ति के लिए पैदल चलता है ।
संयमी जीव रक्षा के लिए पैदल चलता है ।

5) संसारी को पुद्गल में रति (रागभाव) होती है ।
संयमी को परमात्मा में रति होती है ।

6) संसारी को इन्द्रिय सुख में आनंद आता है ।
संयमी को आत्मा-सुख में आनंद आता है ।

7) संसारी बाहर से ऊजला दिखाने की मेहनत करता है ।
संयमी आत्मा को निर्मल बनाने की मेहनत करता है ।

8) संसारी अनुकूलता का रागी होता है ।
संयमी प्रतिकूलता का रागी होता है ।

9) संसारी को सुख में रस होता है ।
संयमी को गुणों में रस होता है ।

10) संसारी ममता में मग्न रहता है ।
संयमी समता में मग्न रहता है ।

11) संसारी तन के मैल से बचने की कोशिश करता है ।
संयमी मन के मैल से बचने की कोशिश करता है ।

आहार-शुद्धि

`सद्गृहस्थ के लिए अन्याय, अनीति से प्राप्त धन त्याज्य है तो साधु के लिए आद्याकर्मी आदि दोषों से दूषित गोचरी त्याज्य है ।

वि.सं. 2001 में पूज्य आचार्य भगवंत श्रीमद् प्रेमसूरिजी म.सा. का अपने विशाल परिवार के साथ अपनी जन्मभूमि पिंडवाडा (राज.) में चातुर्मास था ।

चातुर्मास प्रवेश के बाद पू. आचार्य भगवंत ने अपने शिष्यों को आदेश कर दिया कि गोचरी में चाय व चावल नहीं लाने है ।

इसके पीछे एक ही कारण था कि वि.सं. 1978 में जब उन्होंने पिंडवाडा में चातुर्मास किया था, तब वहां किसी के घर में चाय व चावल नहीं बनते थे । मारवाड में उन दोनों वस्तुओं का प्रचलन नहीं था, अतः वे गुजराती साधुओं के लिए स्पेशियल ही बनाते थे ।

दोषित आहार से बचने के लिए पूज्यश्री बहुत ही सावधानी रखते थे ।

फिर जब वहां के गृहस्थों द्वारा पूज्यश्री को पूरा विश्वास हुआ कि आज की परिस्थिति अलग है, अब तो मारवाड में और राजस्थानी प्रजा में चाय व चावल का उपयोग आम (Common) हो गया है, उसके बाद ही उन्होंने मांडली में चाय-भात लाने के लिए अपनी सम्मति दी ।

शिष्यों के आत्महित के लिए कितनी जागृति !

❖ वि.सं. 2016 में पिंडवाडा में अंजनशलाका प्रतिष्ठा महोत्सव पू. आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय प्रेमसूरीश्वरजी म.सा. की निश्रा में चल रहा था । उस समय महोत्सव दरम्यान संघ की ओर से तीनों टाइम स्वामी-वात्सल्य होते थे ।

पूज्यश्री को पता चला कि सभी मजदूर रात्रि भोजन करते है । इस बात का पता चलते ही पूज्यश्री ने संघ के अग्रणियों को बुलाकर कहा, `मजदूरों को रात को खिलाना हो तो मुझे प्रतिष्ठा नहीं करानी है ।' और तुरंत ही पूज्यश्री की आज्ञा को शिरोधार्य कर मजदूरों के लिए भी दिन में ही भोजन की समुचित व्यवस्था चालू हो गई ।

शारीरिक-मानसिक और आत्मिक रोग व चिकित्सा

- सर्दी-कफ-खांसी-बुखार आदि शारीरिक रोग है ।
- **दुर्ध्यान, दुर्विचार, चिंता, खेद आदि मानसिक रोग है ।**
- राग-द्वेष, कषाय विषयों का राग आदि आत्मिक रोग है ।

–शारीरिक और मानसिक रोगों की जड़ आत्मिक रोग अर्थात् राग-द्वेष ही है ।

जो आत्मा राग-द्वेष से मुक्त हो जाती है, वह तन और मन के रोगों से भी सहज मुक्त हो जाती है ।

इन्द्रिय-संयम, सोलह भावनाएं आदि आत्मरोग को मिटाने के लिए औषध स्वरुप है ।

वाणी-स्वातंत्र्य–भाषा समिति

स्वतंत्र भारत में हर किसी नागरिक को अपने विचार अभिव्यक्त करने का अधिकार है । हर व्यक्ति अपने दिल की बात प्रस्तुत कर सकता है, परंतु जैन शासन में वाणी की स्वतंत्रता नहीं है ।

जो मन में आ गया और बोल दिया–`इस वाणी स्वातंत्र्य के बजाय श्रमण जीवन में भाषा समिति और वचन गुप्ति पर खूब भार दिया गया है ।

महान पुण्य के उदय से जबान मिली है तो सब कुछ या जो कुछ भी बोलने का अधिकार नहीं मिल जाता है ।

बोलना वह है, जो बोलने से स्व-पर का हित होता है ।

जो शब्द बोलने से स्व और पर का अहित होता हो तो ऐसा सत्य वचन भी नहीं बोलना चाहिए ।

गाय-भैंस-कुत्ते-बिल्ली के भव में जीभ तो मिली है, परंतु स्पष्ट जुबान नहीं मिली है । वे पशु अपने मन के भावों को स्पष्ट रुप से अभिव्यक्त नहीं कर पाते है ।

भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति मानव भव में ही है, परंतु बोलने में भी सावधानी जरुरी हैं–अन्यथा इसी वाणी के द्वारा वह अहित हो सकता हैं, जो एटमबम या हाइड्रोजन बम से भी नहीं होता है ।

44. अजीर्ण से बचे

अनंत ज्ञानी सर्वज्ञ सर्वदर्शी तारक तीर्थंकर परमात्मा के शासन के परमार्थ को पाए हुए किसी अज्ञात महर्षि ने हमें 5 प्रकार के अजीर्णो से बचने के लिए सुंदर प्रेरणा दी है ।

`अजीर्ण' का नाम सुनते ही लगभग यही बात सामने आती है कि भोजन नहीं पचता है तो अजीर्ण हो जाता है । **'अजीर्ण प्रभवा रोगाः'** अर्थात् एक अजीर्ण में से ढेर सारे रोग पैदा होते है ।

लगभग सभी शारीरिक रोगों का मूल अजीर्ण है । एक अजीर्ण में से अनेक रोग पैदा होते है ।

भोजन संबंधी अजीर्ण तो सिर्फ शरीर को ही बीमार करता है । शारीरिक स्वास्थ्य को ही नुकसान पहुँचाता है । भोजन के अजीर्ण का तो प्रत्यक्ष अनुभव होता है, अतः उससे बचने के लिए व्यक्ति तुरंत तैयार हो जाता हैं, क्योंकि हर व्यक्ति को अपने स्वास्थ्य की चिंता सताती है । उस स्वास्थ्य को पाने के लिए वह सब कुछ करने के लिए तैयार हो जाता है । स्वास्थ्य पाने के लिए वह खाना भी छोड देगा अथवा भोजन में अति प्रिय ऐसे पदार्थों का भी त्याग कर देगा अथवा डॉक्टर की सलाह से अत्यंत कडवी गोली भी लेने के लिए सहज तैयार हो जाएगा ।

उस अजीर्ण से भी जो ज्यादा नुकसानकारक है, जो अजीर्ण शरीर को नहीं, किंतु आत्मा को नुकसान करनेवाले है उन्हें छोडने के लिए व्यक्ति जल्दी तैयार नहीं होगा । उन अजीर्णो को छोडने की बात तो दूर रही, उन्हें समझने के लिए भी तैयार नहीं होगा ।

आज हम उन अजीर्णो को समझने की कोशिश करेंगें, जो शरीर को नहीं, बल्कि आत्मा को भयंकर नुकसान पहुँचाने है ।

(1) ज्ञान का अजीर्ण-अभिमान :–

सम्यग्ज्ञान का फल विनय है ।

ठीक ही कहा है, **'विद्या ददाति विनयम ।'** जीवन में सच्ची विद्या की प्राप्ति होने पर व्यक्ति खूब विनीत अर्थात् नम्र बनता है ।

ज्ञानी को आम्रवृक्ष की उपमा दी है । आम के झाड की यह विशेषता होती है कि उस झाड पर ज्योंहि आम के फल लगते है, उस झाड की डालियाँ नीचे झुक जाती है । राह में चलता राहगीर भी उन फलों को आसानी से तोड लेता है ।

बस, इसी प्रकार जीवन में ज्यों-ज्यों सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होती जाती है, त्यों-त्यों व्यक्ति नम्र बनता जाता है ।

–ज्ञान के आठ-आचारों में दूसरा व तीसरा आचार विनय और बहुमान है । इसका अर्थ है कि विनय और बहुमान से ज्ञान की वृद्धि होती है ।

ज्यों-ज्यों ज्ञान बढता है, त्यों-त्यों जीवन में विनय गुण का विकास होता है ।

साध्वाचार के प्रतिपादक **'उत्तराध्ययन सूत्र'** में सबसे पहला अध्ययन **विनय अध्ययन** ही है । विनय से ही श्रुत की प्राप्ति होती है ।

सभी धार्मिक ग्रंथों का प्रारंभ मंगलाचरण से होता है और उस मंगलाचरण में देव और गुरु को वंदन-नमस्कार ही होता है ।

नमस्कार भाव से ही जीवन में ज्ञान की प्राप्ति होता है । जो जितना ज्ञाती होता है, वह उतना नम्र बनता है ।

परंतु व्यक्ति जब ज्ञान को पचा नहीं पाता है, तब उसे ज्ञान का अजीर्ण हो जाता हैं, उस अजीर्ण के फल स्वरुप उसे अपने ज्ञान का अहंकार हो जाता है । वह अपने ज्ञान से फूल जाता है । जिसके फलस्वरुप वह अपने आपको महाज्ञानी-पंडित समझता है और औरों का अपमान-अनादर-तिरस्कार करने लग जाता है ।

–प्रभु महावीर के संपर्क के पूर्व 14 विद्याओं में पारगामी बने इन्द्रभूति को भी ज्ञान का खूब अजीर्ण हो गया था इसलिए महावीर प्रभु की सर्वज्ञता की बात सुनकर वह अभिमान से फुटबॉल की भांति उछल रहा

था । अरे ! मेरे सर्वज्ञ के होते हुए वह कौन है जो अपने आपको सर्वज्ञ मान रहा है ।

उसका अभिमान तभी तक टिकेगा, जब तक वह मेरे साथ वाद नहीं करता है ।

वह मेरे साथ वाद करने के लिए आए या न आए, मैं स्वयं ही उसके सामने वाद करने के लिए चल पडता हूँ...और मैं उसे परास्त करके ही रहूंगा ।

–सर्वज्ञ के अनंतज्ञान के आगे इन्द्रभूति का ज्ञान महासागर के आगे बूंद जितना भी नहीं था–फिर भी ज्ञान के अजीर्ण के कारण इन्द्रभूति का अपनी भूल समझ में नहीं आ रही थी ।

आखिर इन्द्रभूति वाद के लिए प्रभु के समक्ष उपस्थित हुए...और प्रभु के वचन सुनते ही उनका अभिमान चूर-चूर हो गया ।

प्रभुने उन्हें ऐसी औषधि दी कि उसका ज्ञान का अजीर्ण दूर हो गया और वे अभिमान के शिखर से नीचे उतरकर नम्रता के शिखर पर चढ गए । वे नम्रता की साक्षात् मूर्ति बन गए ।

2) अपने निर्मल ब्रह्मचर्य के फल स्वरुप जिनका नाम 84 चोबीसी तक अमर रहेगा जिन्होंने काम के घर में रहकर काम का नाश किया था, जो ब्रह्मचर्य सम्राट् कहलाए ऐसे 10 पूर्वधर बने स्थूलभद्रमहामुनि भी ज्ञान को पूर्णरुप से पचा न पाए उन्हें भी अपने ज्ञान का अजीर्ण हो गया ।

वे भी वंदनार्थ आई हुई अपनी बहन साध्वियों के आगे अपने ज्ञान का प्रदर्शन करने के लिए तैयार हो गए और उन्होंने अपना रुप परिवर्तन कर सिंह का रुप कर दिया ।

कंदर्प को मूल से उखडनेवाला स्थूलभद्रजी दर्प के आगे हार खा गए ।

इसके परिणाम स्वरुप वे शेष चार पूर्वों का अर्थ से ज्ञान प्राप्त न कर सके ।

उनसे चार पूर्वों का उच्छेद हो गया ।

3) सद्गुरु के समागम के पूर्व चित्तौड के राजपुरोहित हरिभद्र पुरोहित जो 14 विद्याओं में पारगामी थे, उन्हें ज्ञान का इतना अधिक अजीर्ण हो चूका था कि वे हमेशा अपने पेट पर पट्टा बांधकर चलते थे । मानों ! कहीं उनका ज्ञान पेट फूटकर बाहर न निकल जाय !

वे अपने साथ जाल और सीढी रखते थे, कहीं कोई वादी पानी में छिप जाय तो जाल के सहारे उसे बाहर निकाला जा सके और कोई वादी कहीं ऊपर छिप जाय तो सीढी द्वारा वहां जाकर उसे वाद में परास्त कर दिया जाय ।

परंतु एक दिन किसी साध्वीजी के मुख से **'चक्किदुगं हरिपणगं'** की गाथा को सुनते-सुनते उनके अभिमान का घडा फूट गया और वे गुरु चरणों में जाकर नम्रता की मूर्ति बन गए ।

4) ऐसा ही अभिमान सिद्धसेन ब्राह्मण को भी था, जो जंगल में ही एक ग्वाले के आगे वादिदेवसूरिजी के साथ वाद करने के लिए तैयार हो गए थे ।

उस वाद में उन्होंने अपने पांडित्य का प्रदर्शन किया था जबकि वादिदेवसूरिजी ने समय को पहिचानते हुए ग्वाले की भाषा में

'न वि मारइ न वि चोरइ, परदार गमण निवारइ' की काव्य पंक्तियों के द्वारा उस ग्वाले का दिल जीत लिया और उस वाद में सिद्धसेन ब्राह्मण को परास्त कर दिया था ।

ज्ञान का अजीर्ण अत्यंत ही खतरनाक है, वह आत्मा का अवश्य पतन कराता है, अतः अपनी आत्मा के हित को नजर समक्ष रखते हुए इस ज्ञान के अजीर्ण (अहंकार) से बचने के लिए सतत प्रयास करना चाहिए ।

तप का अजीर्ण क्रोध :–

परमात्म-शासन में तप धर्म की आराधना कर्मों की निर्जरा के लिए बताई है । तप अर्थात् इच्छाओं का निरोध । तप का फल है–रसनेन्द्रिय जय, देह की ममता का नाश और जीवन में समताभाव की वृद्धि ।

तप के फल स्वरुप जीवन में समता बढनी चाहिए, इसके बजाय क्रोध पैदा होता हो तो समझना चाहिए कि तप का पाचन नहीं हुआ है ।

तप के अजीर्ण का परिणाम अत्यंत ही भयंकर होता है ।

1. अग्निशर्मा तापस ने लाखों वर्षों तक मासक्षमण के पारणे मासक्षमण की भीष्म तपश्चर्या की थी ।

मास क्षमण के पारणे में भी वह एक ही घर भिक्षा के लिए जाता था ।

–मासक्षमण के पारणे में भिक्षा मिल जाय तो ठीक हैं, अन्यथा उसी दिन से मासक्षमण का प्रारंभ कर देता था ।

–अग्निशर्मा तापस ने तीन बार पारणे में अंतराय करनेवाले गुणसेन राजा पर क्रोध किया था और उसे भव में मार डालने का नियाणा किया था ।

इतनी कठोर तपश्चर्या करनेवाले तापस को भी अंत में गुणसेन राजा के प्रति क्रोध पैदा हो गया, जिसके फलस्वरुप वह अनंत संसारी बन गया ।

नौ-नौ भवों तक उस वैर की परंपरा चली आखिर नौवें भव में गुणसेन राजा का तो मोक्ष को गया, परंतु इस क्रोध की आग ने उस अग्निशर्मा को अनंतकाल तक संसार में भटकने की सजा कर दी ।

तप यदि समतापूर्वक किया जाय अर्थात् तप का पाचन हो गया तो उसी भव में, अनंत भवों में उपार्जित कर्मों को जलाकर मोक्ष प्रदान कर सकता है और तप का पाचन होने के बजाय अजीर्ण हो जाय तो वही तप आत्मा को दीर्घकाल तक संसार में भटका देता है ।

2) चंडकोशिक नाग अपने पूर्व भव में उग्र तपस्वी महात्मा थे ! अपनी भूल बतानेवाले बालमुनि के प्रति किए क्रोध के कारण वे अपना भव हार गए और मनुष्य भव में से सांप के भव में आ गए थे ।

3) क्रिया का अजीर्ण–निंदा (तिरस्कार) :–

मोक्ष मार्ग की आराधना-साधना में आगे बढने के लिए ज्ञान के साथ क्रिया भी आवश्यक है ।

ज्ञान से कर्तव्य-अकर्तव्य का भेद ज्ञान होता है तो क्रिया से कर्त्तव्य का पालन और अकर्त्तव्य का त्याग किया जाता है ।

जीवन में 'क्रिया' आ जाने के बाद जो क्रिया हीन है या जो क्रियाओं का अच्छी तरह से पालन नहीं करते है, उनके प्रति भाव दया का भाव होना चाहिए न कि तिरस्कार का ।

सत्क्रिया के आचरण से अपूर्व कर्म निर्जरा होती है, परंतु दूसरों का तिरस्कार अपमान अनादर करने से नीच गोत्र कर्म का बंध होता है । अतः अपने जीवन में पूजा-सामायिक-प्रतिक्रमण आदि क्रियाएं करते हो तो वे क्रियाएं नहीं करनेवालों के प्रति तिरस्कार भाव नहीं होना चाहिए ।

4) रुप का अजीर्ण, चरित्र हीनता (व्यभिचार):–

पुण्य के उदय बिना सुंदर रुप की प्राप्ति नहीं होती है । उस रुप की सफलता चरित्र को सुंदर बनाने में है । जिसका चरित्र (Character) अच्छा नहीं है उसके रुप की कोई कीमत नहीं है ।

दूध में मिठास होती है, परंतु दूध में शक्कर डालने से उसकी मिठास और बढ जाती है ।

सुंदर रुप सभी को अच्छा लगता है, परंतु उस रुप के साथ 'शील' जुड जाय तो वह रुप लाभदायी सिद्ध होता है, परंतु रुप के साथ शील न हो तो वह रुप भी आत्मा के अघः पतन का ही कारण बनता है ।

5) धन का अजीर्ण–विलासिता :– लाभांतराय कर्म के क्षयोपशम से जीवन में धन की प्राप्ति होती है ।

रोटी को पचाना आसान है, परंतु धन को पचाना बहुत कठिन है । धन का पाचन हो जाय तो व्यक्ति प्राप्त धन का दान आदि में सदुपयोग करता है और धन का अजीर्ण हो जाय तो उसी धन का विलासिता व मौज मस्ती में उसका उपयोग करता है ।

विलासी जीवन जीने से आत्मा का भयंकर अहित होता है ।

निर्धन व्यक्ति को धन की अभिलाषा रहती है, परंतु धन आने के बाद उसका सदुपयोग ही होगा, ऐसी गारंटी नहीं है । अधिकांश व्यक्ति धन आने के बाद विलासिता में डूब जाते है । अभक्ष्य भक्षण करते है और व्यभिचार-दुराचार का सेवन करते है ।

45. अनुष्ठान को सद्अनुष्ठान बनाए

जैन शासन में मात्र क्रिया-अनुष्ठानों से मुक्ति नहीं बताई है, बल्कि विधिपूर्वक सम्यग् अनुष्ठानों की आराधना से ही मुक्ति की प्राप्ति कही गई है ।

बाह्य क्रिया अनुष्ठानों में साम्यता दिखाई देने पर भी अनुष्ठानों के उद्देश्य-भेद आदि को लेकर **'अध्यात्म सार'** ग्रंथ में महोपाध्याय श्रीमद् यथोविजयजी म. ने इन अनुष्ठानों के पांच भेद बतलाए है, जिनमें प्रथम तीन अनुष्ठान त्याज्य और अंतिम दो अनुष्ठान उपादेय बतलाए गए है ।

1) विषानुष्ठान :– जिस प्रकार विष का भक्षण शीघ्र मौत का कारण बनता है, उसी प्रकार जो गुरुवंदन प्रभु-पूजा आदि अनुष्ठान आहार, उपधि, पूजा तथा ऋद्धि आदि इस लोक संबंधी सुखों की प्राप्ति की इच्छा से किए जाते हैं, वे अनुष्ठान चित्त के शुभ भावों का नाश करने वाले होने से विष अनुष्ठान कहलाते है । आराधना-अनुष्ठान के फल स्वरुप इह लौकिक सुखों की वांछा (इच्छा) करने से अनुष्ठान संबंधी मानसिक शुभभाव नष्ट हो जाते है ।

बाह्य क्रियादि अनुष्ठानों का मूलभूत उद्देश्य चित्त के शुभ भावों को पुष्ट करना है, परंतु इह लौकिक सुख की इच्छा रुप विष का मिश्रण करने से वे अनुष्ठान भी विषानुष्ठान बन जाते है ।

विष से मिश्रित मिष्टान्न त्याज्य गिना जाता है, उसी प्रकार अशुभ भाव का मिश्रण हो जाने से अनुष्ठान का शुभभाव नष्ट हो जाने के कारण उपलक्षण से वह अनुष्ठान भी विष अनुष्ठान बन जाता है ।

2) गर-अनुष्ठान :– कांच आदि खराब द्रव्यों के संयोग से बना पदार्थ **'गर'** कहलाता है । गर का भक्षण करने से व्यक्ति तुरंत नहीं मरता हैं, परन्तु कालांतर (लंबे समय बाद) में व्यक्ति को मरना पडता है । गर अर्थात् धीमा जहर (Slow-Poison) जो व्यक्ति को धीरे धीरे खत्म करता है ।

इसी प्रकार बाह्य अनुष्ठान के फल स्वरुप जब परलोक में देवभव, दिव्य-भोग आदि की प्राप्ति की इच्छा की जाती है, तब उस अनुष्ठान को गरानुष्ठान कहा जाता है । इस प्रकार के अनुष्ठान के फल स्वरुप परलोक में देव भव दिव्य-भोग, राज्य आदि की प्राप्ति तो हो जाती है, परन्तु उसके बाद आत्मा का पतन हो जाने से यह अनुष्ठान भी अहितकर ही है ।

धर्म आराधना के फलस्वरुप, पारलौकिक सुख की इच्छा करना 'निदान' कहलाता है । निदान करने से सद्धर्म का फल नष्ट हो जाता हैं, अतः यह अनुष्ठान भी त्याज्य गिना गया है ।

जैन शासन में सर्वत्र निदान का निषेध कहा गया हैं, क्योंकि निदान का परिणाम अच्छा नहीं है, अतः विचित्र अनर्थ को देने वाला होने से यह अनुष्ठान सर्वत्र त्याज्य है ।

3) अननुष्ठान :– क्रिया में प्रणिधान, उपयोग (एकाग्रता) तथा क्रिया में आदर आदि का अभाव होने पर लक्ष्यहीन शून्य हृदय से जो अनुष्ठान किया जाता हैं, वह अननुष्ठान कहलाता है । समूर्च्छिम जीव मन रहित होने से जिस प्रकार उनकी प्रवृत्ति उद्देश्यहीन ही होती हैं, उसी प्रकार लक्ष्यहीन शून्य मनस्कता से जो अनुष्ठान किया जाता हैं, वह अननुष्ठान कहलाता है ।

इस प्रकार के अनुष्ठानों में मुख्यतया ओघ संज्ञा और लोकसंज्ञा की बहुलता होती है । सूत्र तथा गुरु वाणी की उपेक्षा पूर्वक होने वाली क्रिया को ओघ संज्ञा कहा जाता है । ओघसत्ता वाला व्यक्ति शून्य मन से जैसे-तैसे आवश्यक आदि क्रिया को करता है ।

`सूत्र (जिनाज्ञा) अनुसार विधिपूर्वक क्रिया अनुष्ठान आदि करने का आग्रह रखने पर तो तीर्थ (शासन) का ही उच्छेद हो जाएगा । क्योंकि अधिकांश लोग जिनाज्ञा के मर्म को तो जानते नहीं हैं और उन्हें जिनाज्ञानुसार ही क्रिया-अनुष्ठान करने का कहेंगें तो वे अनुष्ठान करना ही छोड देंगें, अतः जैसे-तैसे भी करते हो तो उन्हें करने देना चाहियें ।'

इस प्रकार जो बोलता हो और लोकाचार में ही आदर बहुमान रहा हुआ हो तो उसे लोक संज्ञा कहा जाता है ।

'अधिक संख्या में लोग जो अनुष्ठान करते है, वह अनुष्ठान हमें करना चाहियें' इस प्रकार लोक प्रवाह को ही प्रमुखता देकर अनुष्ठान का सेवन किया जाय तब तो मिथ्यादृष्टियों का धर्म ही आदरणीय बन जाएगा, क्योंकि उनकी संख्या हमेशा अधिक ही रहने वाली हैं ।

गतानुगतिकता से सूत्र से निरपेक्ष होकर ओघ व लोक संज्ञानुसार जो अनुष्ठान किया जाता है, वह अननुष्ठान कहलाता है । इस प्रकार के अनुष्ठान का फल अकाम निर्जरा और काय क्लेश ही है । क्योंकि सकाम-निर्जरा तो उपयोगपूर्वक व जिनाज्ञानुसार प्रवृत्ति से ही होती हैं ।

4) तद्हेतु अनुष्ठान :– मोक्ष के उपायभूत जो अनुष्ठान वीतराग परमात्मा ने बतलाए है, उनमें तीव्र राग भाव हो तथा मोक्ष के उद्देश्य को लेकर ही जो अनुष्ठान किया जाता है, वह तद्हेतु अनुष्ठान कहलाता है । यह अनुष्ठान चरमावर्त में आने पर ही होता है, इस अनुष्ठान में अनाभोग, विस्मृति, अनादर, आशंसा आदि का अभाव होता हैं ।

चरमावर्त को **'धर्म यौवनकाल'** कहा है और अचरमावर्त को बाल्यकाल कहा गया है । चरमावर्त में आने पर ही सर्वज्ञ प्रणीत क्रिया-अनुष्ठानों पर राग-भाव पैदा होता है, अचरमावर्त दशा में तो सर्वज्ञ कथित क्रिया-अनुष्ठानों से विपरीत अनुष्ठानों पर ही दृढ राग रहा हुआ होता है ।

जिस प्रकार यौवनवय में प्रवेश करने पर व्यक्ति भोग सुखों के राग के कारण सभी प्रकार की बाल-क्रीडाओं का त्याग कर देता हैं, उसी प्रकार आत्मा जब धर्म यौवन काल में प्रवेश करती है, तब धर्मराग के कारण असत् क्रियाओं के प्रति रहे रागभाव का त्याग कर देती है ।

जिस प्रकार बीज के वपन (बौने की क्रिया) के बाद अंकुर, कांड, नाल, तथा पुष्प आदि के क्रम से फल की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार धर्म के अनुराग के कारण चरमावर्त में बीजादि के क्रम से चौथा तद्हेतु अनुष्ठान कहा गया है ।

1) बीज :– जिन शासन में सर्वज्ञ कथित विधि पूर्वक शुद्ध अनुष्ठान करनेवाले आराधकों को देखकर शुद्ध अनुष्ठान के विषय में आंतर प्रीति बहुमान उत्पन्न हो और अनुष्ठान करनेवालों के प्रति प्रशंसा

(अनुमोदना) की भावना हो तथा शुद्ध अनुष्ठान के विषय में कर्तव्य बुद्धि हो उसे धर्मवृक्ष का बीज (बीजाधान) कहते हैं ।

अंकुर :– अन्य आकांक्षा आदि दोषों से रहित, निरंतर, पूर्वोक्त धर्मानुष्ठान को करने के तीव्र मनोरथ को धर्मवृक्ष का अंकुर कहते है ।

स्कंध :– अनुष्ठान की शुद्धि के लिए जो काल, विनय आदि साधन हैं, उनके अनुरुप विचार विमर्श व चिंतन को धर्मवृक्ष का स्कंध कहते है ।

पत्र :– पूर्वोक्त अनुष्ठान की शुद्धि में हेतुभूत काल विनय आदि आचार एवं ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि के विषय में जो उद्यम किया जाता हैं, वह पत्र-शाखा आदि समान है ।

पुष्प :– गीतार्थ आचार्य आदि गुरु के साथ संयोग, शास्त्र-श्रवण, अध्ययन आदि...उनसे युक्त काल-विनय आदि के सेवन में समर्थ बनें, यह धर्मवृक्ष के पुष्प की प्राप्ति समान है ।

फल :– गीतार्थ आचार्य आदि के संयोग के कारण जो धर्मोपदेश मिलता है, उससे सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है और उस सम्यक्त्व से क्रमशः मोक्षपद की प्राप्ति होती है ।

5) अमृत अनुष्ठान :– जिस प्रकार चंदन की सुगंध चंदन से अभिन्न होती है, उसी प्रकार सकल दोष से रहित ज्ञानादि में परिणमन रुप उपयोग ही सहज शुद्ध भावधर्म है । उस भावधर्म से गर्भित मोक्ष के उपाय अनुष्ठान को अमृत अनुष्ठान कहते है ।

जिनेश्वर परमात्मा की आज्ञा को प्रधान करके अतिशय मोक्षाभिलाष से युक्त चित्त के शुद्ध उपयोग द्वारा जो अनुष्ठान किया जाता है, उसे अमृत अनुष्ठान कहते है ।

सम्यग् रीति से शास्त्रीय पदार्थों का चिंतन एवं क्रिया में एकाग्रता तथा सदनुष्ठान एवं मोक्ष में प्रयोजक जो-जो उपाय हैं, उनमें अविपर्यास रुप से आचरण करना, अमृत अनुष्ठान कहलाता है ।

इन पांच अनुष्ठानों में पहले के तीन अनुष्ठान असदनुष्ठान होने से त्याज्य और अंतिम दो मोक्ष साधक होने से उपादेय है ।

46. उत्तमोत्तम या उत्तम बनें

1) अधमाधम :– इस लोक और परलोक-उभयलोक को बिगाडनेवाले । अतिकाम, अतिलोभ, अतिविषयासक्ति तीव्र क्रोध अर्थ और काम के साधनों पर अतिमोह ।

प्रवृत्ति ऐसी कि जिसके परिणाम स्वरुप यह भव भी बिगडे और परलोक भी बिगडे । ऐसे जीव भयंकर पाप प्रवृत्तियों के कारण न तो इस जीवन में सुखी होते है और न ही परलोक में ।

उदा. धन की तीव्र आसक्ति में डूबा मम्मण शेठ ! जो न इस जीवन में सुखी था और न ही परभव में ।

तीव्र भोग सुखों में आसक्त वासवदत्ता ! जो अंत में रक्तपित्त कोढ रोग से ग्रस्त बनी । इस जीवन में भी दु:ख हुई और मरकर दुर्गति में चली गई ।

2) अधम :– परलोक के सुख से सर्वथा निरपेक्ष और सिर्फ इसी जीवन में भौतिक सुखों की चिंता करनेवाले जीव अधम कहलाते है । इस लोक के सुख पाने के लिए कुछ भी पाप करने के लिए तैयार और परलोक की जिन्हें लेश भी चिंता नहीं !

3) विमध्यम :– ऐसे जीवों को इस लोक में भी सुख चाहिये और परलोक में भी सुख चाहिये । जीवन में थोडी भी तकलीफ न पडे, इस प्रकार धर्म आराधना करनेवाले जीव ! अपनी अनुकूलता देखकर धर्म आराधना करनेवाले जीव विमध्यम कहलाते हैं ।

4) मध्यम :– एक मात्र परलोक को लक्ष्य में रखकर आराधना करनेवाले `मध्यम' कहलाते है । इन जीवौ को इस लोक के सुखों की परवाह नहीं होती है । परलोक को सुधारने के लिए वे तप-त्याग-संयम आदि के भयंकर कष्ट भी हंसते मुंह स्वीकार लेते है ।

देवांगना जैसे 32 पत्नियों के मालिक अवंतिसुकुमाल ने पूज्य आचार्य भगवंत के मुख से **`नलितीगुल्म विमान'** का वर्णन सुना । तुरंत ही अवंतिसुकुमाल को जातिस्मरण ज्ञान हो गया । उसे यहां की दुनियां,

यहां के भोग सुख तुच्छ लगने लगे और उसी देव विमान में जाने के लिए तैयार हो गया ।

उसने पूज्य आचार्य भगवंत को नलिनीगुल्म विमान में जाने का उपाय पूछा । आचार्य भगवंत ने चारित्र का मार्ग बताया । रात्रि में ही चारित्र स्वीकार कर श्मशान भूमि में चले गए सियालिनी के मरणांत उपसर्ग सहन किये । मरकर देवलोक में चले गए ।

इस प्रकार **'मध्यम'** कक्षा के जीव परलोक के लिए सभी कष्ट सहन कर लेते है ।

5) उत्तम :– ये जीव एक मात्र 'मोक्ष' का लक्ष्य रखकर ही प्रवृत्ति करनेवाले होते है । मोक्ष से कम उन्हें कुछ नहीं चाहिये ।

देवलोक में सच्चा सुख नहीं है, क्योंकि वे भी ईष्या-लोभ-मत्सर-क्रोध आदि से पीडित होते हैं ।

देवता का आयुष्य छ मास बाकी होता है, उस समय उनके च्यवन के चिह्न उनके देह पर नजर आते हैं । फुलों की मालाएं मुर्झाने लगती हैं । कल्पवृक्ष कांपने लगते हैं । देह की कांति कम होने लगती है । अधिकांश देवता मरकर तिर्यंच गति में जाते हैं, अतः उन्हें ज्योंहि अपनी भावी दुर्गति का ख्याल आता हैं वे अत्यंत दुःखी हो जाते है ।

देवलोक में रहे देवता भी पूर्ण सुखी नहीं है तो फिर मनुष्य आदि की तो क्या बात करे ?

चार गतियों के भयंकर दुःखों को जानकर उत्तम आत्मा को एक मात्र मोक्ष की लगनी पैदा होती है । मोक्ष को पाने के लिए वह तलपापड बनती है ।

केवली बनी पुष्पचुला साध्वी को अर्णिकापुत्र आचार्य ने प्रश्न किया, 'मेरा मोक्ष कब होगा ?' उन्होंने कहा, 'गंगा नदी पार करते हुए ।'

बस, अपने भावी मोक्ष की बात सुनते ही अर्णिकासुत्र आचार्य जंघाबल क्षीण होने परे भी गंगा नदी की ओर जाने के लिए उत्सुक हो गए ।

नाव में गंगा पार करते समय पूर्वभव की वैरिणी । देवी ने उन्हें भाले से बिंध लिया । अर्णिका पुत्र आचार्य के शरीर में से खून टपकने लगा-परंतु उस समय भी अर्णिकापुत्र आचार्य सोच रहे थे, `अहो ! मेरी रक्त बुंदों से अप्काय के कितने जीव मर रहे हैं ?'

उन्हें अपने दुःख की लेश भी चिंता नहीं थी परंतु अप्काय के जीवों की जीवदया का विचार कर रहे थे । भावना-भावना में उन्हें केवलज्ञान हो गया ।

6) उत्तमोत्तम :– शिवमस्तु सर्व जगतः अर्थात् **`जगत् के जीव मात्र का कल्याण हो' संसार में एक भी जीव दुःखी न रहे । संसार के सभी जीव पूर्ण सुख के भोक्ता बने ।'** इस सर्वोत्तम भावना के फलस्वरुप जो आत्माएं **`तीर्थंकर नाम कर्म'** का बंध करती हैं और उस भव्य भावना के फलस्वरुप तीसरे भव में जो आत्माएं तीर्थंकर बनने का सौभाग्य प्राप्त करती है ।

तीर्थंकर परमात्मा स्वयं राग-द्वेष के विजेता बने है तो अपनी शरण में आनेवालों को भी राग-द्वेष की विजेता बनाती है ।

वे स्वयं भव सागर से पार उतरते है तो अपनी शरण में आनेवाले को भी भव सागर से पार उतारते है ।

वे स्वयं बोध को पाए हुए है और शरण में आनेवाले को भी बोध दिलाते है ।

वे स्वयं संसार से मुक्त बने हैं और अपनी शरण में आनेवालों को भी संसार से मुक्त बनाते हैं ।

ऐसी महान् आत्माओं को `तीर्थंकर' कहा जाता है और वे उत्तमोत्तम कहलाती है ।

उत्तमोत्तम में नंबर लगे, ऐसी भावना होनी चाहिए उत्तमोत्तम न बन सके तो कम से कम उत्तम में तो अपना नंबर लगना ही चाहिए ।

नोट

जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर, मरुधररत्न, पू.आ. श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा मुख्यतया हिन्दी भाषा में आलेखित 265 पुस्तकों में से उपलब्ध एवं अवश्य पठनीय साहित्य-सूची

Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य	Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य
1.	Pearls of Preaching	60/-	37.	दक्षिण भारत प्रवचन	160/-
2.	Panch Pratikraman Sootra	100/-	38.	विविध देववंदन	100/-
3.	अमृत रस का प्याला	300/-	39.	नवतत्त्व विवेचन	110/-
4.	ध्यान साधना	40/-	40.	लघु संग्रहणी	140/-
5.	शंका समाधान (भाग-5)	160/-	41.	समाधि की साधना	300/-
6.	शत्रुंजय यात्रा	40/-	42.	New Message for a New Day	600/-
7.	शत्रुंजय की भाव यात्रा	230/-	43.	आओ ! पर्युषण प्रतिक्रमण करें !	150/-
8.	आओ संस्कृत सीखें भाग-2	400/-	44.	इन्द्रिय पराजय शतक	150/-
9.	दंडक सूत्र विवेचन	90/-	45.	दूसरा कर्मग्रन्थ	55/-
10.	प्रवचन का अमृत	200/-	46.	तीसरा कर्मग्रन्थ	90/-
11.	पर्युषण अष्टानिका प्रवचन	120/-	47.	चौथा कर्मग्रन्थ	140/-
12.	गणधर-संवाद	80/-	48.	पाँचवाँ कर्मग्रन्थ	160/-
13.	आओ ! उपधान पौषध करें !	130/-	49.	छठा-कर्मग्रन्थ	210/-
14.	श्री नमस्कार महामंत्र	180/-	50.	नित्य देववंदन	निशुल्क
15.	संस्मरण	50/-	51.	संबोह-सित्तरि (वैराग्य का अमृत कुंभ)	160/-
16.	आध्यात्मिक पत्र	60/-	52.	श्री सिद्धहेमचन्द्र-शब्दानुशासनम् (भाग:-1)	1170/-
17.	चिंतन का अमृत कुंभ	80/-	53.	श्री सिद्धहेमचन्द्र-शब्दानुशासनम् (भाग:-2)	1040/-
18.	पंच-प्रतिक्रमण सूत्र (भाग-1)	210/-	54.	श्री सिद्धहेमचन्द्र-शब्दानुशासनम् (भाग:-3)	900/-
19.	पंच-प्रतिक्रमण सूत्र (भाग-2)	220/-	55.	श्री सिद्धहेमचन्द्र-शब्दानुशासनम् (भाग:-4)	1270/-
20.	पंच-प्रतिक्रमण सूत्र (भाग-3)	125/-	56.	श्री भद्रंकर प्रश्नोत्तरी	170/-
21.	पंच-प्रतिक्रमण सूत्र (भाग-4)	135/-	57.	अध्यात्मयोगी से प्रश्नोत्तर	160/-
22.	विवेकी बनो	90/-	58.	योग की आठ दृष्टियाँ	430/-
23.	श्रमण क्रिया के मुख्य सूत्र	200/-	59.	10 श्रमण-धर्म	250/-
24.	प्रवचन-वर्षा	60/-	60.	साचा माणस बनीए ! (गुजराती)	300/-
25.	आओ श्रावक बनें !	25/-	61.	शुभ-संदेश	250/-
26.	व्यसन-मुक्ति	100/-	62.	भक्ति से मुक्ति	200/-
27.	श्रावक जीवन दर्शन	250/-	63.	सहनशील बनों (22 परीषह)	180/-
28.	महावीर प्रभु की पट्टधर परंपरा 58-80	280/-	64.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	350/-
29.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	80/-	65.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	300/-
30.	समाधि मृत्यु	80/-	66.	नवकार-प्रवचन	180/-
31.	तीन भाष्य	150/-	67.	जीवन-प्रसंग	360/-
32.	आठ कर्म निवारण पूजाएं	200/-	68.	सात वासुदेव-प्रतिवासुदेव बलदेव	50/-
33.	तत्त्वार्थ-सूत्र-भाग-1	200/-	69.	समाधी मृत्यु	80/-
34.	तत्त्वार्थ-सूत्र-भाग-2	200/-	70.	पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन	120/-
35.	सज्झायों का स्वाध्याय	100/-	71.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	80/-
36.	कोयंबत्तुर-प्रवचन	150/-	72.	श्रमण-हितशिक्षा	250/-

पुस्तक प्राप्ति स्थान : दिव्य सन्देश प्रकाशन C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002. M. 84 84 84 84 51 (only whatsapp)

Kamal PRINTER'S M. 9820530299